चन्दामामा
मार्च १९७८

NP 007 बबल गम

मुफ़्त

यदि तुम्हारे 007 के पॅकेट में सफेद रंग का बबल गम हो तो तुरंत ही अपने दुकानदार से एक और 007 बबल गम मुफ़्त में हासिल करो.

खेल के मैदान में हो या बाहर—सिर्फ़ NP 007 बबल गम ही हमारे युवा खिलाड़ियों का हौसला बुलन्द करता है.

वे 007 बबल गम को बहुत चाहते हैं—क्योंकि इनमें भरी है—'बबल शक्ति'!

इसके बनाने वाले हैं—जाने-माने NP—आइ एस आइ का निशान हासिल करनेवाले एकमात्र बबल गम निर्माता.

NP बबल गम यानी 'बबल शक्ति'

Dattaram-NP-16 HIN

दि नॅशनल प्रॉडक्ट्स, बंगलूर.

चन्दामामा

मार्च १९७८

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 2 & 3, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor : NAGI REDDI.

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

इस महीने की बेताल कथा "भिखारी योगी" है।

कुछ धूर्त लोग अपने कपटपूर्ण उपायों के द्वारा ऐसा अभिनय करते हैं कि वे अमानवीय शक्तियाँ रखते हैं, पर वे तब तक ही लाभ उठा पाते हैं जब तक कि वे पकड़े नहीं जाते। (ज्योतिषी का भविष्य) नामक कहानी द्वारा यह बात विदित होती है। कुछ लोग अनायास ही अमानवीय शक्तियाँ न रखते हुए भी जनता की अज्ञानता के कारण प्रकाश में आते हैं, पर उनके द्वारा उन्हें सब प्रकार से लाभ उठाने के अवसरों के प्राप्त होने पर भी उनका तिरस्कार करते हैं। यह बात बेताल कथा में स्पष्ट चित्रित है।

वर्ष : ३० मार्च १९७८ अंक : ७

एक प्रति : १-२५ :: वार्षिक चन्दा : १५-००

न ह्यतो धर्मचरण
किंचि दस्ति महत्तरम्
यथा पितरि शुश्रूषा
तस्य वा वचन क्रिया ॥ १ ॥

[पिता की सेवा करना तथा पिता के वचन का पालन करने से बड़ा धर्म कोई नहीं है ।]

अस्माकं च कुले पूर्वं
सगर स्वाज्ञया कितु:
खर्नभि स्सागरै र्भूमि
मवाप्त स्सुमहा न्वध: ॥ २ ॥

[प्राचीन काल में "हमारे" सूर्यवंश में सगर के आदेशानुसार पृथ्वी को खोदकर उनके पुत्र मृत्यु को प्राप्त हुए हैं ।]

जमदग्न्येन रामेण
रेणुका जननी स्वयं
कृत्ता परशु नारण्ये
पितुर्वचन कारिणा ॥ ३ ॥

[जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने अपने पिता के वचन का पालन कर जंगल में अपनी माता रेणुका का कुल्हाड़ी से वध कर डाला है ।]

पिता के वचन–१

काकोलूकीयम

[५६]

इसके उपरांत अरिमर्दन ने प्रकारकर्ण का विचार जानना चाहा। उसने यों कहा: "प्रभू! हमें इसका वध नहीं करना चाहिए। इसकी रक्षा करने पर यह हमारा परम मित्र बनकर सलाहकार का काम कर सकता है। राजनीति तो यही बताती है कि अपने मित्र को कभी शत्रु और शत्रु को कभी मित्र बन जानेवाले जैसे देखना चाहिए। यही नीति तो हम 'राजकुमार के पेट में साँप' वाली कहानी के द्वारा सीख लेते हैं न?"

"वह कैसी कहानी है?" अरिमर्दन ने पूछा। इस पर प्रकारकर्ण ने यों बताया:

किसी देश में देवशक्ति नामक राजा राज्य करता था। उसका इकलौता पुत्र युवराजा था। मगर उसके पेट में एक साँप पहुँच गया था, इस वजह से वह दिन ब दिन कमज़ोर होता गया। इस पर राजा देव शक्ति दुखी हुआ। वह मंदिरों में जाकर सभी देवताओं से प्रार्थना करने लगा कि उसके पुत्र के पेट से साँप को हटा दे। आख़िर अपने मंत्रियों की सलाह पाकर उसने पड़ोसी देश की राजकुमारी के साथ अपने पुत्र का विवाह भी किया।

राजकुमारी बड़ी बुद्धिमती थी। एक दिन वह कहीं बाहर चली गई। लौटते वक़्त उसने देखा कि उसका पति एक बांबी पर अपना सिर रखे सो रहा है। राजकुमार के पेट में जो साँप था, वह मुंह से झांककर बाहर देख रहा है। उस वक़्त बांबी में स्थित साँप ने भी अपना सिर बाहर निकाला।

बांबी में स्थित साँप ने राजकुमार के पेट में स्थित साँप से पूछा—"अरे, तुम

एक सुंदर राजकुमार के पेट में पहुँच गये हो?"

राजकुमार के पेट में स्थित साँप ने कहा–"अरे, तुमने क्या अपने पेट में खजाना छिपाकर नहीं रखा है?"

"अरे मूर्ख! राई, काली मिर्च और अजवाइन का काढ़ा बनाकर पीने से तुम्हारा काम तमाम हो जाएगा। समझें!" बांबी में स्थित साँप ने रहस्य खोल दिया।

"गरम पानी बांबी में डाल दे तो तुम्हारा काम भी तो खतम हो जाएगा न?" पेट में स्थित साँप बोला।

राजकुमारी ने दोनों का वार्तालाप सुना। बांबी में स्थित साँप के बताये अनुसार राजकुमारी ने काढ़ा बनवाकर अपने पति को पिलाया, पेट का साँप मरकर बाहर निकल आया। राजकुमार जल्द ही पूर्ण स्वस्थ हो गया। इसके बाद राजकुमारी ने बांबी में गरम पानी डालकर साँप को मार डाला और बांबी खुदवाकर ख़जाना हासिल किया।

अरिमर्दन ने अपने पांच मंत्रियों की सलाहें सुनने के बाद अधिक लोगों की सलाह के अनुसार काम किया। पर अपनी सलाह का तिरस्कार होते देख रक्ताक्षी ने कहा–"भाइयो, तुम लोगों ने गलत सलाह देकर राजा को फांसी की सज़ा दिलवाने के बराबर का काम किया है। तुम लोगों के कारण हमारे राजा इस तरह धोखा खा गये जैसे प्राचीन काल में एक बढ़ई धोखा खा गया था।

"वह कैसी कहानी है?" राजा अरिमर्दन तथा उसके अन्य मंत्रियों ने पूछा। इस पर रक्ताक्षी ने यों कहा: एक गांव में एक बढ़ई रहा करता था। उसकी पत्नी का चरित्र ठीक न था। इस पर बढ़ई ने सचाई जानने का निश्चय किया।

एक दिन बढ़ई ने अपनी पत्नी से कहा–"कल मैं दूर की यात्रा पर जा रहा हूँ। थोड़े दिन तक मैं लौटकर नहीं आ सकता।" यह बात सुनकर उसकी पत्नी बडी खुश

हुई। उसने अपने पति के वास्ते तरह-तरह के पकवान्न और मिठाइयाँ बनाईं।

दूसरे दिन सवेरे जब बढ़ई घर से चल पड़ा, तब उसकी पत्नी बन-ठनकर उसके प्रेमी देवदत्त के घर पहुँच गई और बोली– "मेरे पति दूर की यात्रा पर चले गये हैं। वे थोड़े दिन तक लौटकर नहीं आयेंगे। आज रात को तुम मेरे घर आओ।"

उधर बढ़ई घर से जो निकला, सीधे जंगल में चला गया। सारा दिन जंगल में बिताकर संध्या के समय पिछवाड़े की राह से घर के अन्दर घुस गया और चारपाई के नीचे छिप गया।

इसके थोड़ी देर बाद देवदत्त बढ़ई के घर आया। उस खाट पर बिछाये गये बिस्तर पर बैठ गया। फिर बढ़ई की पत्नी भी आकर खाट पर बैठ गई। उसके बैठते वक़्त उसका दायाँ पैर खाट के नीचे छिपे बढ़ई को लग गया। उसने भांप लिया कि उसकी जांच करने के लिए उसका पति खाट के नीचे छिपा हुआ है। वह देवदत्त से बोली–"महाशय! मैं बड़ी पतिव्रता हूँ।"

"तब तो तुमने मुझे यहाँ पर क्यों बुला भेजा?" देवदत्त ने पूछा।

"मैं प्रति दिन काली माता की पूजा करती हूँ। आज काली माता ने मुझे दर्शन देकर समझाया कि मेरे पति देव की मृत्यु छे महीनों में हो जाएगी, इसलिए अगर मुझे अपने पति के प्राण बचाना है तो मुझे अपने पतिव्रत्य का त्याग करना होगा। इस पर मैंने उनसे बताया– "देवीजी मेरे लिए अपने पतिव्रत्य से अपने पति के प्राण ही कहीं बढ़कर है। इसलिए मैंने अपने प्राणों से प्यारे पतिव्रत्य को तुम्हें सौंपने के ख्याल से यहाँ बुलाया है।" बढ़ई की पत्नी ने समझाया।

ये बातें सुन बढ़ई धोखे में आ गया और वह सोचने लगा–'लोग कैसे मूर्ख हैं! मेरी पत्नी जैसी पतिव्रता के चरित्र में कलंक लगा रहे हैं।" यों सोचकर बढ़ई ने अपनी पत्नी से क्षमा माँग ली।

१९४. असभ्यों की सामर्थ्य

पेरू (दक्षिण अमेरिका) के कुज्को के आगे के पहाड़ों पर आदिवासियों ने एक विस्मयपूर्ण दुर्ग का निर्माण किया है। इस चित्र में दिखाई देनेवाले पत्थरों में से कुछ की ऊँचाई २५ से २० तक की है। इन पत्थरों के बीच किसी भी प्रकार की कीचड़ नहीं है। पर इन पत्थरों के बीच चाकू का "ब्लेड़" तक घुस नहीं पाता। इसके निर्माता लोहे से सर्वथा अपरिचित थे, इन लोगों ने केवल पत्थरों के औजार तथा बटे हुए रस्सों जैसे असभ्य युग के साधनों का उपयोग किया है।
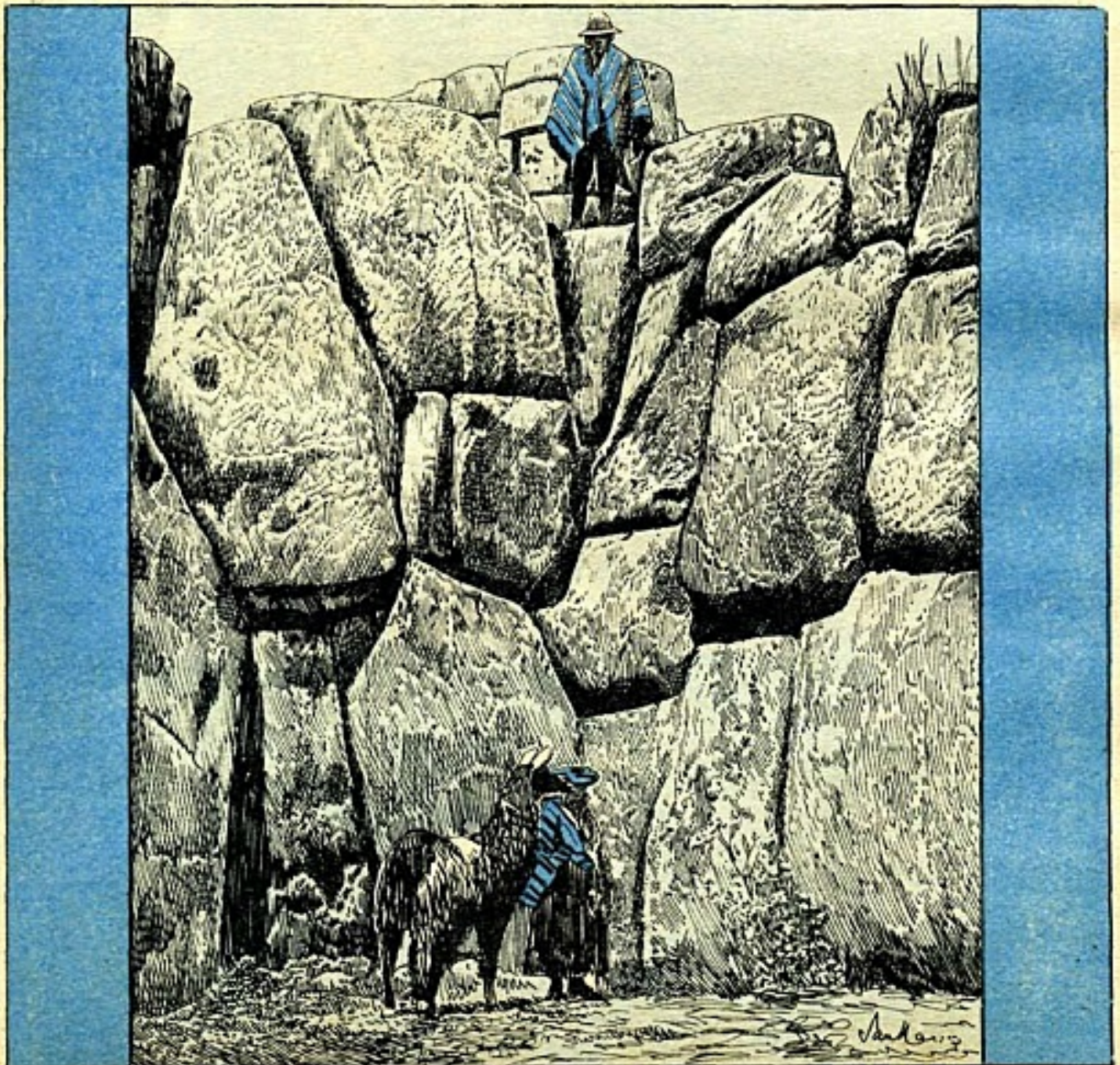
माया सरोवर

[२४]

[माया सरोवरेश्वर जब नरभक्षी लोगों के हाथ में पड़ जाता है, तभी सिद्ध साधक वहाँ पर पहुँच जाता है। अपने मालिक की रक्षा करने के प्रयत्न में मकरकेतु सिद्ध साधक के सेवक जलवृक राक्षस को घायल बना देता है। नरभक्षी लोग जब उन्हें बन्दी बनाने का प्रयत्न करते हैं, इसी समय कुछ अश्वारोही वहाँ पर पहुँच जाते हैं। बाद...]

सिद्ध साधक ने ज्यों ही अपने पैनी शूल को माया सरोवरेश्वर के बक्ष पर टिका दिया, त्यों ही भय के मारे वह कांप उठा और बोला–"यह तो अन्याय है, अधर्म है! कोई भी बीर अपने शत्रु को असावधान देख उसे मारने का प्रयत्न नहीं करता।"

दूसरे ही क्षण सिद्ध साधक अपने शूल को पृथ्वी पर टिकाकर बोला–"मैं एक साधारण वीर नहीं हूँ, महाबीर हूँ। तुम अपनी तलवार निकालो, मैं तुम्हारा पराक्रम देखना चाहता हूँ।"

इस पर माया सरोवरेश्वर ने अपने अनुचर मकरकेतु की ओर नज़र दौड़ाई। इस बीच अश्वारोहियों का नेता प्रवेश करके उनके सामने घोड़े से उतर पड़ा।

सिद्ध साधक क्रोध में आया। उसकी ओर देखते हुए गरजकर बोला–"तुम कौन

हो? हमारे झगड़े में तुम नाहक़ क्यों दखल देना चाहते हो?"

अश्वारोहियों का नेता इस प्रश्न के उत्तर में अवहेलनापूर्वक हँसने को हुआ, पर नर वानर तथा जलग्रह को देख डर गया। तब धीमे स्वर में उत्तर दिया—"इसके पूर्व मैंने जो चेतावनी दी, उसके द्वारा तुम अब तक समझ गये होगे कि मैं कौन हूँ? और किनके आदेश पर यहाँ पहुँचा हूँ?"

"मैंने तुम्हारी चेतावनी ठीक से नहीं सुनी! मैं अपने दुश्मन माया सरोवरेश्वर के भागने से रोकने के प्रयत्न में था। अब मैं फिर एक बार पूछ रहा हूँ, बताओ, इन घोड़ों या खच्चरों पर सवार हो आये हुए तुम कौन हो?" सिद्ध साधक ने पूछा।

इसका उत्तर अश्वारोहियों के नेता ने तत्काल नहीं दिया, सिद्ध साधक की ओर एक बार आपाद मस्तक दृष्टि दौड़ाकर तब बोला—"ओह, तुम हो? तुम तो सिद्ध साधक हो न? कुछ दिन पूर्व तुमने हिरण्यपुर में श्मशान के पहरेदार का सर काट डाला था, इस अपराध में तुम एक और व्यक्ति के साथ हमारे राजा के यहाँ ले जाये गये थे? यह बात सही है न?"

"तुम तो मेरा परिचय जानते हो! पर मैं तुम्हें पहचान नहीं पा रहा हूँ कि तुम कौन हो? पर तुम्हारा नाम मुझे याद नहीं आ रहा है।" सिद्ध साधक ने कहा।

"मेरा नाम वीरसेन है। पर यह बताओ कि महाराजा कनकाक्ष के पुत्र-पुत्री की खोज में तुम्हारे साथ निकले हुए जयशील नामक वह युवक कहाँ?" वीरसेन ने पूछा।

"जयशील हंसों के रथ पर आसमान में कहीं उड़ते होंगे। अच्छी बात, तुम जरा हट जाओ! वीर की भांति डींग मारनेवाले इस कायर जल मानव का मुझे अंत करना है।" इन शब्दों के साथ सिद्ध साधक ने अपना शूल ऊपर उठाया।

"मैं यहाँ पर ख़ून-खराबी के होते सहन नहीं कर सकता।" इन शब्दों के साथ वीरसेन ने अपने अश्वारोही अनुचरों को इशारा किया।

अश्वारोही तलवार लिये सिद्ध साधक की ओर बढ़े, इस बीच सिद्ध साधक ने चारों तरफ़ एक बार नज़र दौड़ाकर वीरसेन से कहा—"हमारे चारों तरफ़ कई दिनों से भूख-प्यास से तड़पनेवाले नरभक्षी लोग फैले हुए हैं। चाहें तो वे लोग तुम्हें तथा तुम्हारे अश्वारोहियों का पल भर में संहार कर सकते हैं। इससे नरभक्षियों का ही भला होगा। हम लोगों की हानि होगी।"

"भले-बुरे की बात मैं कुछ नहीं जानता। यहाँ से थोड़ी ही दूर पर राजा कनकाक्ष पड़ाव डाले हुए हैं। तुम सब लोग वहाँ पर आ जाओ। वहीं पर निर्णय होगा।" वीरसेन ने कहा।

सिद्ध साधक ने वीरसेन की ओर क्रोध भरी दृष्टि दौड़ाकर कहा—"यह तुम्हारी आज्ञा है या बिनती? मैं इस दुनिया में एक महाकाल की आज्ञा को छोड़ और किसी की भी आज्ञा का पालन नहीं करता।"

जलवृक राक्षस ने भांप लिया कि उसका मालिक अश्वारोहियों के सरदार

पर नाराज़ है, अपने पत्थर के गदा कंधे पर रखकर ज़मीन पर पैर पटक दिया और ज़ोर से हुंकारा। नर वानर ताल ठोंकते इस तरह गरज उठा, जिससे सारा जंगल गूंज उठा। उन विकृत आकृतवालों और उनके अट्टहासों को देख एक आश्विक का घोड़ा भड़क उठा, झट से वह अपनी पिछली टांगों पर सीधा खड़ा हो गया, तब उसका सवारी एक दम नीचे गिर पड़ा, फिर क्या था, घोड़ा भड़ककर दूर भाग गया।

इसे देख भय कंपित हो वीरसेन सिद्ध साधक से बोला—"महाशय, आप भी मेरे जैसे हिरण्यपुर के नागरिक हैं। आप महाराजा के दर्शन करने क्यों नहीं चलते?"

इन शब्दों के साथ सर झुकाकर साधक को प्रणाम किया ।

इस पर परमानंदित हो सिद्ध साधक बोला—"तुमने जो कहा, सो ठीक ही है! चलो, मैं भी राजा के पास चलता हूँ। पर साथ ही हमें इन नर भक्षियों तथा सरोवर के दुष्टों को भी उनके पास ले जाना है।" ये शब्द कहकर उसने चारों तरफ़ नज़र डाली, पर माया सरोवरेश्वर तथा मकरकेतु को वहाँ पर न पाकर वह चौंक पड़ा और पूछा—"ये दुष्ट कहाँ? कहाँ भाग गये?"

उसी वक़्त सारे नर भक्षी एक साथ ठठाकर हँस पड़े। उनका नेता शेरसिंह, वृद्ध पुजारी गणाचारी आगे आकर सिद्ध साधक से बोले—"जब तुम और ये घुड़ सवारी झगड़ा कर रहे थे, तब मौक़ा पाकर ये दोनों चुपके से जंगल में खिसक गये। जंगली देवता के द्वारा आहार के रूप में भेजे गये उन्हें पकड़ने के लिए हमारी जाति के लोग उनके पीछे चले गये हैं।"

"तुम लोगों ने मुझे क्यों नहीं बताया कि वे दोनों भाग रहे हैं? प्राणों के साथ उनके बन्दी हो जाने तक तुम दोनों हमारे बन्दी बनकर रहेंगे, समझें?" यों कहकर सिद्ध साधक ने जलवृक राक्षस को आदेश दिया—"जलवृक! इन दोनों को ले जाकर एक घोड़े पर रस्सों से बांध दो।"

जलवृक राक्षस ने बिजली की गति से जाकर शेरसिंह तथा बूढ़े गणाचारी को पकड़ लिया। एक घोड़े पर सवार हुए व्यक्ति के उतरने के पहले उसे अपनी कोहनी से मारकर दूर गिराया और उन दोनों को घोड़े की पीठ पर बांध दिया।

इसके बाद सिद्ध साधक वीरसेन से बोला—"तुम आगे चलते हुए मुझे रास्ता दिखाओ, हम सब राजा कनकाक्ष के पास जाकर उनके दर्शन कर लेंगे।" यों कहकर साधक ने नर वानर को हांक दिया। उस वक़्त नरभक्षी आपस

में सलाह-मशविरा कर रहे थे कि अपने नेताओं को बन्दी बनानेवालों के साथ कैसा व्यवहार करें, तभी साधक अपने शूल को दिखाते हुए उन्हें आदेश दिया–"अरे मानवों को खानेवाले दुष्ट मानव! सुनो! तुम्हारी जाति के लोग माया सरोवरेश्वर और उसके अनुचर मगर मच्छवाले चेहरेवाले की खोज में गये हैं, वे लोग उनकी थोड़ी भी हानि कर बैठेंगे तो मैं पहले तुम्हारे नेता और गणाचारी को अपने नर वानर का आहार बना डालूंगा और बाद तुम लोगों का इस तरह शिकार खेलूंगा जैसे खूंख्वार जानवरों का शिकार खेला जाता है। समझें!"

साधक के मुंह से यह धमकी सुन सारे नरभक्षी लोग डर के मारे मौन रह गये। दीनतापूर्ण चेहरा बनाकर अपने नेता और गणाचारी की ओर ताकने लगे। वे दोनों घोड़े पर छटपटाते, हाथ-पैर मारते चिल्लाने लगे–"हे हामारे जंगली देवता! इन मानवों को हमारे आहार के रूप में भेजकर तुमने हमारे प्राणों को खतरे में डाल दिया है! हम तुम्हारी शरण में आये हैं! हमें बचाओ।"

अश्वदल के नेता ने तलवार दिखाकर उन्हें डराते अपने अनुचरों को राजा कनकाक्ष के पड़ाव की ओर बढ़ने का आदेश दिया। उनके पीछे नर वानर पर सिद्ध साधक भी चल पड़ा। उसी समय जंगल में एक दूसरे स्थान पर हंसों के रथ पर जानेवाले जयशील और उसके मित्रों को अचानक एक बाघ द्वारा पीछा करनेवाली युवती दिखाई दी। वह बाघ से बचते पेड़ों के तनों की परिक्रमा करने लगी। जहाँ-तहाँ डालियों को पकड़कर ऊपर चढ़ने की कोशिश करती और प्राण बचाने की कोशिश करते इधर-उधर बेतहाशा भाग रही है। वह अत्यंत भयभीत नजर आ रही थी।

हंसों के रथ पर सवार वैद्यदेव नामक देवशर्मा ने सर्व प्रथम उस दृश्य को देखा।

वह पल भर के लिए भय और संभ्रम में आकर कांप उठा। तब बगल में बैठे जयशील का कंधा पकड़कर झकझोरते हुए बोला–"जयशील! बाघ के द्वारा पीछा करनेवाली उस युवती को देखो! वही कांचनमाला है। माया सरोवरेश्वर के सेवकों द्वारा अपहरण की गई राजकुमारी है, राजा कनकाक्ष की पुत्री है। बताओ, हम अब क्या करें?"

जयशील उस प्रदेश को देखते रथ पर खड़ा होकर रथ सारथी से बोला–"सुनो, तुंम तुरंत रथ को नीचे उतार दो।"

अंगरक्षक ने सर झुकाकर नीचे के महा वृक्षों को देखते हुए कहा–"महाशय! यहाँ पर रथ को उतारना संभव नहीं है। थोड़ी दूर और जाकर उस खाली मैदान में रथ उतार देता हूँ।"

इस पर क्रोध में आकर जयशील ने कहा–"अरे मूर्ख, यह सही है कि तुम रथ को एक सुरक्षित स्थान में ले जाकर वहाँ उतार दोगे, मगर इस बीच राजकुमारी बाघ का आहार बन जाएगी। झट से रथ को थोड़ा नीचे ले जाओ। मैं पेड़ की डालों पर कूदकर राजकुमारी को बचाने का प्रयत्न करूँगा।"

जयशील का आदेश पाकर अंगरक्षक ने हंसों के कंठों में बंधे रस्सों को नीचे की ओर खींचा। हंसों ने पेड़ों की चोटियों तक रथ को खींच दिया, जयशील बिना विलंब किये रथ से कूद पड़ा और एक पेड़ पर गिरकर अपने दोनों हाथों से पेड़ की एक शाखा को मरोड़कर पकड़ लिया। मगर उसके बोझ से पेड़ की वह शाखा नीचे गिर पड़ी।

पेड़ की डाल ज्यों ही ज़मीन को छू गई, त्यों ही जयशील ने अपने हाथ-पैर के टूटने से बचने के लिए पल्थी मारकर अपनी रक्षा कर ली। उस वक़्त कांचन माला का पीछा करनेवाला बाघ उस ध्वनि को सुनकर चौंक पड़ा और पीछे मुड़कर देखा। मौक़ा पाकर कांचनमाला निकट

की एक डाल पकड़कर ऊपर रेंगने लगी। मगर इस बीच बाघ फिर से गरजकर उस पर आक्रमण करने को हुआ। जयशील को तलवार खींचने का समय न था, अतः तेजी के साथ दौड़कर उसने बाघ की पिछली टांगों को पकड़ लिया और उसे खींचकर ज़ोर से दूर फेंक दिया।

कांचनमाला पेड़ की डालों में हवा के झोंकों के साथ झूलने लगी। जयशील को देख बोली—"महाशय, वक़्त पर आकर आप ने बाघ से मेरी रक्षा की, मैं आप के प्रति बड़ी कृतज्ञ हूँ।"

जयशील उस युवती के सौंदर्य पर चकित रह गया। वह अनेक दिनों से अपार यातनाएँ झेलकर भी आख़िर राजा कनकाक्ष की पुत्री कांचनमाला को बचा सका, मगर उसका भाई कांचनवर्मा कहाँ है?

जयशील ने उस युवती से कहा—"मैं जानता हूँ कि तुम्हारा नाम कांचनमाला है। यह भी जानता हूँ कि तुम किस देश की राजकुमारी हो! तुम्हारा भाई कांचन वर्मा कहाँ पर हैं? तुम हंसों के रथ से नीचे गिरकर अपने प्राण कैसे बचा पाई हो?"

जयशील यों बात कर ही रहा था, इस बीच कांचनमाला पेड़ की डालों पर से नीचे उतर आई। उसे इस बात का आश्चर्य हुआ कि यह साहसी और सुंदर युवक मेरा परिचय कैसे जान पाया है, फिर धीमी आवाज़ में बोली—"महाशय, मैं भाग्यवश हंसों के रथ पर से एक नाले में गिर पड़ी, इसलिए बच गई। मेरे साथ रथ में स्थित सरोवरेश्वर और उसका रथ सारथी शायद इस जंगल में मेरे ही जैसे प्राणों के साथ गिरे होंगे। मेरा भाई कांचनवर्मा इस वक़्त माया सरोवरेश्वर के महल मे बन्दी है।"

इस पर जयशील ने कहा—"मैं माया सरोवरेश्वर के बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी रखता हूँ! उसके सेवक सर्पनख और

सर्पस्वर के साथ एक और प्रमुख व्यक्ति के साथ भी मेरा परिचय हो चुका है। इस वक़्त मुझे माया सरोवर से तुम्हारे भाई को भी बंधन-मुक्त करना है। संभवत: वहाँ पर जाने का रास्ता तुम जानती होगी; लेकिन हमें पहले यहीं कहीं पर स्थित मेरे मित्र सिद्ध साधक से मिलना होगा।"

इसके बाद कांचनमाला जयशील के साथ चलने को तैयार हो गई, तभी जयशील के प्रहार से कमर टूटने की वजह से बेहोशी हालत में स्थित बाघ होश में आया और उठकर दाढ़े फैलाकर ज़ोर से गरज उठा, उन पर आक्रमण करने जाकर धम्म से नीचे गिर पड़ा।

जयशील हाथ में तलवार ले बाघ की ओर बढ़ते बोला—"चाहे जैसे भी खूंख्वार जानवर हो, घायल हो जाने के बाद उसे इस पीड़ा की हालत में छोड़कर नहीं जाना है, मैं अभी इसका सर काट डालूँगा।"

"यह भी कैसा भयंकर बाघ है! आपके आने में थोड़ा भी विलंब हो जाता तो यह मेरी गर्दन चबाकर मुझे खा गया होता!" इन शब्दों के साथ क़ांचनमाला जयशील के पीछे बाघ के निकट पहुँची।

तब तक घनी झाड़ियों की ओट में जलग्रह पर सवार हो यह सारा दृश्य देखनेवाला माया सरोवरेश्वर सर घुमाकर पास में ही घोड़े पर सवार मकरकेतु से बोला—"जयशील को बन्दी बनाने का यही एक अच्छा मौक़ा है। तुम तुरंत कमलनालों की रस्सी फेंककर उसकी गर्दन में कसकर पकड़ लो।"

"महाराज, यह जयशील एक महा सत्व है। इसके साथ दुश्मनी मोल लेना हमारे लिए हितकर नहीं है।" यों समझाकर मकरकेतु ने रोनी सूरत बनाई।

"छी: कायर कहीं का!" यों डांटकर माया सरोवरेश्वर ने मकरकेतु के हाथ से एक मज़बूत रस्सी को खींचकर ले लिया, जलग्रह को आगे बढ़ाकर रस्सी के फँदे को हवा में दो-तीन बार घुमाकर जयशील के कंठ की ओर फेंका। (और है)

भिखारी योगी

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया। पेड़ से शव उतारकर कंधे पर डाल सदा की भांति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा, तब शव में स्थित बेताल ने कहा–" राजन, आप के प्रयत्न अनेक बार असफल रहें, फिर भी मुझे आश्चर्य होता है कि आप बराबर प्रयत्न करते जा रहे हैं। क़िस्मत का अपना पीछा करता हुआ देखकर भी उसे ठुकराकर जंगलों में जानेवाले व्यक्ति होते हैं। इसके उदाहरण स्वरूप में आप को धनगुप्त की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये।"

बेताल यों कहने लगा: धनगुप्त एक व्यापारी का पुत्र है। उसे अपने पिता की पर्याप्त संपत्ति हाथ लगी, मगर वह संपत्ति और भोग दोनों के प्रति बराबर अभिरुचि रखता था। मगर सुख भोगने के लिए

बेताल कथाएं

उसे पर्याप्त समय नहीं मिलता था। इसलिए वह इस भ्रम में पड़ गया कि जुआ खेलकर धन कमाने से दोनों प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति आसानी से हो सकती है। यह विचार करके धनगुप्त ने जुआ खेलना प्रारंभ किया। जुए में जब-तब उसे धन की प्राप्ति होने लगी। इससे उत्साह में आकर भारी पैमाने पर जुआ खेला और अचानक अपना सर्वस्व खोकर कुछ ही दिनों में भिखारी बन बैठा।

तब जाकर ज़िंदगी के प्रति धनगुप्त के मन में विरक्ति पैदा हो गई। उसने खूंख्वार जानवरों तक की परवाह किये बिना जंगल में अपना स्थिर निवास बना लिया। जल्द ही उसके केश जटाओं के रूप में बदल गये। दाढ़ी व मूंछें बढ़ गईं। वह पागल जैसे बन गया।

धनगुप्त जंगल में जहाँ निवास करता था, उसके अनति दूर पर भीलों की एक बस्ती थी। उस वर्ष वक़्त पर बरसात न हुई जिससे भील लोगों को अपने आहार की खोज में दूर तक जंगलों में भटकना पड़ा। उस समय भीलों ने धनगुप्त को देखा। भीलों ने सोचा कि दाढ़ी-मूंछें बढ़ाये किसी प्रकार के हथियार के बिना खूंख्वार जानवरों के बीच निवास करनेवाला धनगुप्त महान शक्तिशाली होगा। यों सोचकर भील लोग उसे फल व शहद ले जाकर उसके पैरों पर गिर पड़े।

इस पर धनगुप्त ने भीलों से पूछा—"तुम लोग क्या चाहते हो?"

"आप हमारी बस्ती में आकर हमारे बीच रहिए। हम लोग आप की सेवा करेंगे। इससे हमारी हालत सुधर जाएगी।" भीलों ने बताया।

धनगुप्त ने चुपचाप भीलों के पीछे उनकी बस्ती में क़दम रखा, संयोग से तभी मूसलधार वर्षा हुई। भीलों के मन में धनगुप्त की महिमा पर विश्वास जम गया। उस दिन से भीलों की ज़िंदगी में भारी परिवर्तन हुआ। इसका मुख्य कारण

बरसात का होना था। फिर भी भीलों ने उसे धनगुप्त की महिमा मानी।

उन्हीं दिनों में उस देश के राजा को समाचार मिला कि भील लोग उद्दण्ड बनकर जब-तब उस देश के गाँवों को लूट रहे हैं। उन्हें दबाने के लिए राजा ने सेना भेजी, मगर भीलों ने इस विश्वास के बल पर कि उन्हें एक महात्मा का आशीर्वाद प्राप्त है, बड़ी हिम्मत के साथ युद्ध किया। उस युद्ध में भीलों की विजय हुई।

राजा को इस बात का आश्चर्य हुआ कि भीलों में ऐसी शक्ति कहाँ से आ गई? इसका पता लगाने के लिए गुप्तचरों को भेजा। भेदियों ने जाकर देखा कि भील लोग धनगुप्त की पूजा करके उसके चारों तरफ़ नाच रहे हैं।

भेदियों से यह समाचार मिलने पर राजा ने भी धनगुप्त की महिमा पर विश्वास किया और सोचा कि ऐसे व्यक्ति के द्वारा भीलों का उपकार होने की अपेक्षा राज्य का उपकार होना ज्यादा अच्छा होगा। यों विचार करके राजा ने धनगुप्त के पास गुप्त रूप से निमंत्रण भेजा।

धनगुप्त ने सोचा कि जब भीलों के बीच उसे ऐसा सुख और आनंद प्राप्त हो सकता है तो राजा के आश्रय में और किस तरह का आनंद प्राप्त होगा! इसी विचार से भीलों को बताये बिना

वह जंगल से निकलकर राजमहल में पहुँचा ।

राजा ने धनगुप्त का उत्साहपूर्वक स्वागत किया और उसका सत्कार करके उसका नाम पूछा ।

धनगुप्त ने जवाब दिया—"राजन, मेरा नाम अनुभवानंद स्वामी है ।"

संयोग की बात थी कि राजा अनेक दिनों से जोड़ों के दर्द से जो परेशान थे, अनुभवानंद स्वामी के राजमहल में क़दम रखते ही वह दर्द कम होता गया और शीघ्र ही बिलकुल दूर हो गया । यों तो राजा ने वैद्यों की प्रशंसा की, लेकिन उनका आंतरिक विश्वास यही था कि अनुभवानंद स्वामी की महिमा के कारण ही उनकी बीमारी दूर हो गई है ।

राजा ने अनुभवानंद स्वामी के लिए एक अच्छा आश्रम बनवाया और उसकी सुख-सुविधा के लिए सारा इंतज़ाम किया । फिर क्या था, राजा के साथ उनके सारे दरबारी स्वामीजी के भक्त बन गये । यों तो स्वामीजी कम बोलते थे, पर संयोग से उसके मुँह से जो भी बात निकलती, सच हो जाती । इस कारण उसकी वाणी पर सबका विश्वास जम गया ।

एक दिन राजा ने स्वामीजी के निकट जाकर बताया कि वह पड़ोसी राज्य पर हमला करने जा रहा है, इसलिए युद्ध में विजय की प्राप्ति के लिए उसे आशीर्वाद दे । राजा वैसे धनगुप्त की जन्म भूमि पर ही युद्ध करने जा रहे थे, फिर भी स्वामीजी को विवश होकर उन्हें आशीर्वाद देना पड़ा । इसलिए उसने कहा—"विजयोस्तु!" अलावा इसके धनगुप्त जानता था कि उसका मातृ देश इस राजा को हराने की स्थिति में नहीं है ।

धनगुप्त के विचार के अनुसार राजा युद्ध में विजयी होकर लौट आये । उन्होंने सोचा कि इस ख़ुशी में अनुभवानंद स्वामीजी का भारी पैमाने पर पूजा एवं सम्मान करना चाहिए । मगर राजा ने

देखा कि स्वामीजी का आश्रम खाली है और उसका पता किसी को नहीं है। इसके बाद स्वामीजी को किसी ने नहीं देखा।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा– "राजन, भीलों के देखने के बाद धनगुप्त की हालत में भारी परिवर्तन हुआ। ज़िंदगी के प्रति आसक्ति उदित हुई। ऐसा व्यक्ति जो ज़िंदगी के उच्च शिखर पर पहुँचने जा रहा था, वह फिर से उस जीवन से क्यों दूर हो गया? क्या इसलिए कि उसके आशीर्वाद के प्रभाव से उसका मातृदेश युद्ध में पराजित हो गया है? अथवा अपने देश को हरानेवाले व्यक्ति के द्वारा सम्मान प्राप्त करने की अनिच्छा की वजह से? इन संदेहों का समाधान जानते हुए भी न दोगे तो आप का सिर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इस पर विक्रमार्क ने यों उत्तर दिया– "धनगुप्त पहले ही जानता था कि उसका मातृदेश युद्ध में विजय प्राप्त नहीं कर सकता है। अगर उसे अपनी वाणी पर थोड़ा भी विश्वास होता तो वह राजा को विजयी होने का आशीर्वाद न देता। अगर वह जो थोड़ी बहुत महिमा रखता तो जुए में हारकर भिखारी न बन गया होता। लेकिन उसे इस बात का दुख हो सकता है कि अपनी वाणी के प्रभाव से ही उसका मातृ देश शत्रुओं के अधीन हो गया है, इस यश का भागी बनना उसके लिए असह्य था। दूसरा खतरा उसके लिए यह भी हो सकता था कि यह बात किसी भी क्षण प्रकट हो सकती थी कि वह किसी प्रकार की महिमा नहीं रखता है। अलावा इसके स्वामीजी बनकर सम्मान पाने की यह ज़िंदगी उसने जान-बूझकर अपनी इच्छा से प्राप्त नहीं की थी। इन सारे कारणों से उसने अपने स्वामीजीवाले जीवन को तिलांजली दे दी है।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पुनः पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

अक्लमंद व्यापारी

एक नगर के व्यापारी के घर से बीस हज़ार रुपयों की चोरी हो गई। वह पहले से ही कंजूस था, तिस पर ऐसी भारी रक़म की चोरी हो जाने से उसका दिल कांप उठा। उसने राजा से इस बात की फ़रियाद भी की, पर कई दिनों तक चोरों का पता न चला। इस पर व्यापारी मानसिक बीमारी का शिकार हो गया।

अंत में उसने भगवान से प्रार्थना करना प्रारंभ किया। नगर के सभी मंदिरों में जाकर वह यह मनौती करने लगा–"भगवान, श्रावण पूर्णिमा तक मेरी चोरी के रुपये मिल जाये तो मैं उसी दिन आप को दस हज़ार रुपयों की भेंट चढ़ाऊँगा।"

दस मंदिरों में जाकर व्यापारी ने यही मनौती की। इसलिए पुजारियों ने सोचा कि वह पागल हो गया है। क्योंकि उसके बीस हज़ार रुपये ही चोरी गये थे।

इस बीच सिपाहियों की होशियारी कहिए या व्यापारी की क़िस्मत, चोर पकड़े गये और रुपये भी बरामद हुए।

श्रावण पूर्णिमा आ पहुँची, पर व्यापारी ने किसी भी देवता को मनौती नहीं चढ़ाई। पुजारियों ने जाकर व्यापारी से पूछा कि अपने मनौती क्यों नहीं चढ़ाई?

इस पर व्यापारी ने यही जवाब दिया–"मैं इसी वक्त मनौती चढ़ाने को तैयार हूँ। लेकिन मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि किस देवता की कृपा से मुझे अपने रुपये वापस मिल गये?"
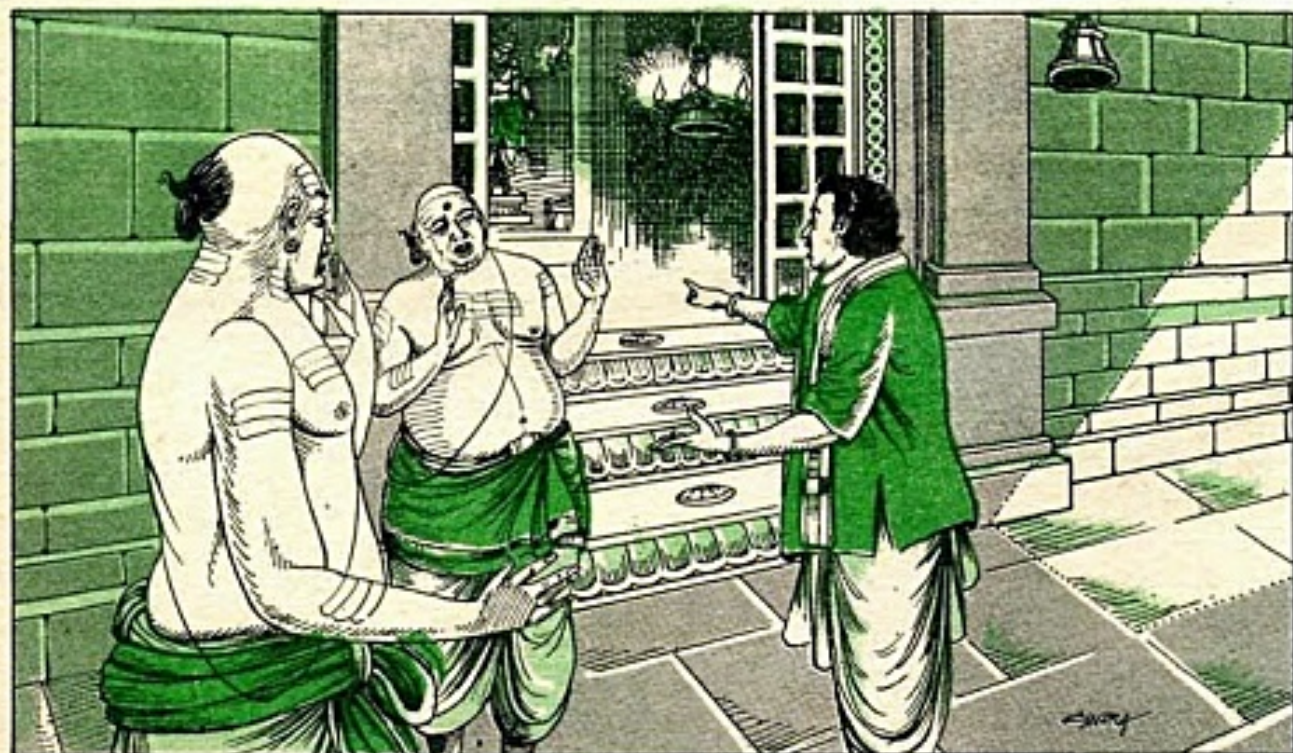
निराई की मजदूरी

सिरिपुर नामक गाँव में धर्मदास नामक एक किसान था। वह अपनी दो एकड़ जमीन जोत-बोकर अपने परिवार के लिए आवश्यक फ़सल पैदा कर लेता था। साथ ही वह यथाशक्ति दूसरों की मदद किया करता था, पर कभी किसी के सामने हाथ फैलाता न था।

धर्मदास के पड़ोस में भद्रदास नामक एक और किसान था जिसके पास पच्चीस एकड़ बढ़िया ज़मीन थी। पर वह फ़सलों की आमदनी से संतुष्ट न होकर महाजनी भी किया करता था। वह गरीबों को चूसकर ज्यादा ब्याज वसूल किया करता था। गरीब लोग भद्रदास को जोंक कहकर पुकारा करते थे।

गाँव का मुखिया भद्रदास का दोस्त था। मुखिये का सहारा पाकर भद्रदास गाँववालों के साथ मनमाने ढंग से अत्याचार किया करता था। सिरिपुर के लोग ज्यादातर गरीब थे। इसलिए उनके साथ जो भी अत्याचार होते, चुपचाप सहन कर लेते थे।

उन्हीं दिनों में भद्रदास की मवेशियों ने धर्मदास के खेत में घुसकर उसकी सारी फ़सल नष्ट कर दी। पर धर्मदास जानता था कि मुखिये से शिकायत करने पर कोई फ़ायदा न होगा, इसलिए वह चुप रहा।

मगर भद्रदास इससे चुप न रहा, उसने उल्टे मुखिये के पास जाकर शिकायत की कि धर्मदास ने उसकी मवेशियों को बुरी तरह से पीटकर अध मरे कर दिया है। मुखिये ने भद्रदास से घूस लेकर धर्मदास को कचहरी में बुलवा भेजा। धर्मदास को देख मुखिये ने पूछा—"धर्मदास, मैंने सुना है कि तुमने भद्रदास की मवेशियों को पीटा है। इसकी कैफ़ियत दो!"

धनंजय वर्मा

मुखिये की बात सुनकर धर्मदास चकित रह गया। वह सोचने लगा—"उसकी फ़सल नष्ट हो गई है, इसलिए उसे फ़रियाद करनी थी। उल्टे उसी से कैफ़ियत मांगी जा रही है! यह कैसा न्याय है?"

धर्मदास ने समझाया—"वास्तव में बात यह है कि भद्रदास की मवेशियों ने मेरे खेत में घुसकर मेरी फ़सल नष्ट कर दी है। मैंने मवेशियों को अपने खेत से ज़रूर भगाया है, लेकिन मैंने उन्हें नहीं पीटा है। नुक़सान उठानेवाले मुझ पर आरोप लगाना न्याय संगत नहीं है!"

"वाह! तुम मुझको ही न्याय सिखाने चले हो? मैं चाहूँगा तो तुम्हारा सिरिपुर में रहना असंभव हो जाय! मेरा फ़ैसला सुन लो! तुमने भद्रदास की मवेशियों को पीटा, इसके हर्जाने के रूप में उसे सौ रुपये दे दो! साथ ही उसकी मवेशियों ने तुम्हारे खेत में निराई की है, इसकी मजदूरी के रूप में पचास रुपये और दे दो! कुल एक सौ पचास रुपये चुका दो।" गाँव के मुखिये ने समझाया।

धर्मदास को लगा कि वह पागल होता रहा है। उसने पूछा—"मवेशियों का निराई करना कैसा?"

"भद्रदास की मवेशियों ने तुम्हारे खेत में सिर्फ़ घास ही चर डाला है। इसलिए तुम्हें मजदूरों को लगाकर निराई कराने की ज़रूरत न रह गई। इसलिए तुम मजदूरों को निराई के लिए जो मजदूरी देते हो, वह भद्रदास की मवेशियों को मिलनी चाहिए।" मुखिये ने बताया।

धर्मदास ने विस्मय में आकर पूछा—"मवेशियों को क्या पता कि फ़सल का पौधा कौन है और घास के पौधे कौन हैं? यह भी कैसा अनोखा न्याय है?"

मुखिये ने क्रोध में आकर कहा—"तुमने मेरे फ़ैसले की अवहेलना की, इस अपराध में तुम कचहरी में कल शाम तक पचास रुपये जुर्माना जमा करो, वरना तुम्हें सजा देनी पड़ेगी।"

धर्मदास रोनी सूरत बनाकर कचहरी से सीधे रामदास के घर पहुँचा। उसे सारी कहानी सुनाई।

रामदास भी धर्मदास जैसे सज्जन व्यक्ति था। दोनों के बीच गहरी दोस्ती थी। धर्मदास का वृत्तांत सुनकर रामदास बड़ा दुखी हुआ और बोला–"तुम्हारे साथ बड़ा ही अन्याय हुआ है। मैं इन लोगों को उचित सबक़ सिखलाऊँगा। तुम ये दो सौ रुपये ले जाकर उनके मुंह पर फेंक आओ। मैं देखूँगा कि इससे दुगुने रुपये उन लोगों से कैसे वसूल करना है!" इन शब्दों के साथ रामदास ने धर्मदास को दो सौ रुपये देकर भेज दिया।

दूसरे दिन रामदास ने अपनी मवेशियों को हांक ले जाकर गाँव के मुखिये के खेत में चराया। मुखिये के नौकरों ने जाकर यह ख़बर दी। मुखिये ने जाकर देखा कि रामदास सारा खेत चरवाकर अपनी मवेशियों को पानी पिला रहा है।

मुखिये ने जाकर रामदास से पूछा– "रामदास, मैंने सुना है कि तुमने मेरे खेत में तुम्हारी मवेशियों को चराया है। इसका तुम क्या जवाब देते हो?"

"क्या मैंने तुम्हारे खेत में मवेशियों को चराया है? किसी ने झूठ-मूठ शिकायत की होगी!" रामदास ने जवाब दिया।

"मेरे नौकरों ने अपनी आँखों से देखा है। तुमने जो काम किया, इसका हर्जाना देना होगा।" मुखिये ने धमकी भरे स्वर में कहा।

"आप जो कुछ करना चाहते हैं, कर लीजिए; मैं हर्जाना न दूंगा।" रामदास ने कड़ा उत्तर दिया।

"अच्छी बात है। इस बात का फ़ैसला अदालत में होगा।" यों कहकर मुखिया शहर में चला गया और न्यायाधिकारी से शिकायत की कि रामदास ने उसके खेत में दस एकड़ जमीन की फ़सल बरबाद की है और इसका हर्जाना दिलवा दे। रामदास को ख़बर मिली कि दूसरे ही दिन उसे

अदालत में हाज़िर होना चाहिए, फिर क्या था, रामदास धर्मदास को साथ लेकर नियत समय पर अदालत में पहुँचा ।

न्यायाधिकारी ने रामदास से पूछा– "मैंने सुना है कि तुमने गाँव के मुखिये के खेत में अपनी मवेशियों को चराकर उनकी फ़सल को नष्ट कर दिया है। इस शिकायत की तुम क्या कैफ़ियत देते हो ?"

"आप तो न्यायाधीश हैं। मैं सच्ची बात बताता हूँ। यह बात सही है कि मैंने मुखिये के खेत में अपनी मवेशियों को चराया है, पर मेरी मवेशियों ने सिर्फ़ घास ही चर डाला है। बाकी फ़सल को कोई नुक़सान नहीं पहुँचाया है। इसलिए आप कृपया मुझे मुखिये से निराई की मजदूरी दिलवा दीजिए।" रामदास ने निवेदन किया। इस पर वहाँ उपस्थित सभी लोग ठठाकर हँस पड़े। न्यायाधिकारी को लगा कि रामदास की बातों में कोई रहस्य छिपा हुआ है। उसने पूछा– "रामदास, निराई की मजदूरी कैसी ?"

"आप धर्मदाता हैं। न्याय कीजिए। इसके पहले भद्रदास के दो एकड़ खेत में निराई कराने के लिए मुखिये ने उसे पचास रुपये मजदूरी दिलाई है। अगर दो एकड़ के लिए पचास रुपये मिल सकते हैं तो दस एकड़ के लिए और ज्यादा रुपये मिल सकते हैं न? इसी ख्याल से मैंने उनके खेत में अपनी मवेशियों के द्वारा निराई करवा दी है। इसलिए न्यायपूर्वक मेरी मवेशियों को निराई की मजदूरी मिलनी चाहिए न? मैं उन मवेशियों का मालिक हूँ, इसलिए आप से निवेदन करता हूँ कि वे रुपये मुझको ही दिलवा दे।" रामदास ने हाथ बांधकर अर्ज किया।

न्यायाधिकारी ने असली बात भांप ली। धर्मदास के मुँह से सारी बातें जानकर धर्मदास को भद्रदास द्वारा दो सौ रुपयों के साथ थोड़ा और हर्जाना दिलवाया। मुखिये को उस पद से हटाकर उस जगह रामदास को नियुक्त किया।

लोभ

एक गाँव में रामशास्त्री नामक एक पुरोहित था। पुरोहिताई से आमदनी कम होती थी। इसलिए रामशास्त्री के मन में यह लोभ पैदा हुआ कि अपने पांडित्य के द्वारा लाखों रुपये कमाकर यश भी प्राप्त करे!

इस बीच उस देश के राजा ने रुद्रयाग करने का संकल्प किया और देश के सभी गाँवों के ब्राह्मण पंडितों के पास निमंत्रण भेजा। निमंत्रण के पाते ही रामशास्त्री ने सोचा कि उसके सपने साकार होने के दिन निकट आ गये हैं। वह राजा के समक्ष अपने पांडित्य का प्रदर्शन करके दरबारी विद्वान बनकर वहीं रह सकता है।

इसी विचार से रामशास्त्री ने अपनी पुरोहिताई छोड़ दी, मकान बेच दिया और रुद्रयाग के प्रारंभ होने की प्रतीक्षा करने लगा। इस बीच गाँववालों ने पुरोहिताई के लिए एक और पुरोहित को बुलवा भेजा।

उन्हीं दिनों में राजा बीमार हो गये और रुद्रयाग एक वर्ष के लिए स्थगित हो गया। फलत: रामशास्त्री न घर का रहा और न घाट का। वह किसी दूसरे गाँव में पुरोहिताई की खोज में चल पड़ा।

साधू की संगति

वल्लभ स्वभाव से होशियार था, पर उसका अपना कहनेवाला कोई न था। जीविका का कोई आधार भी न था। उसने अनेक तकलीफ़ें झेलीं; अंत में निश्चय कर लिया कि धोखा-दगा देकर ही सही आराम से जीना चाहिए।

उन्हीं दिनों में दिव्यानंद नामक एक साधू उस गाँव में आया। गाँव के बुजुर्ग तथा धनियों ने साधू के ठहरने का अच्छा इंतज़ाम किया। साधू प्रति दिन अपने दर्शनार्थियों को उत्तम उपदेश देने लगा। गाँववाले सोना से लेकर सब प्रकार के उपहार साधू को देने लगे।

इसे देख वल्लभ ने अपने मन में सोचा– "साधू ने संसार के सुखों को त्याग दिया है, उसे यह धन, सोना और इन उपहारों की क्या ज़रूरत है? किसी उपाय से इन सब को हड़पना चाहिए।" इस विचार के आते ही वह रोज़ साधू के दर्शन करने जाने लगा। सारी हालत जान ली। एक दिन आधी रात के वक़्त साधू की कुटी में घुस गया और उसे उपहार में प्राप्त सारी चीज़ों को इकट्ठा कर एक गठरी में बांध लिया। उस वक़्त जो आहट हुई, उसकी वजह से साधू जाग पड़ा। उसने आँखें खोलकर वल्लभ को देखा। वल्लभ ने छुरी दिखाकर साधू को धमकाया। इस पर दिव्यानंद ने मुस्कुराकर वल्लभ से पूछा– "बेटा, इन चीज़ों को ले जाकर तुम क्या करोगे?"

वल्लभ पल भर के लिए ठिठक गया और बोला–"यह सारी संपत्ति आप जैसे साधू के लिए अनावश्यक है। इससे मैं ठाठ की ज़िंदगी जी सकता हूँ।"

"तब तो तुम्हें ठाठ से जीने के लिए यह संपत्ति पर्याप्त है? या थोड़ी और भी

लक्ष्मी नरेश यादव

चाहिए?" साधू ने पूछा। वल्लभ ने विस्मय में आकर कहा–"और हो, तो वह भी चाहिए?"

"तब तो तुम मेरे साथ थोड़े दिन और रह जाओ। जब तुम्हारे ठाठ से जीने के लिए आवश्यक संपत्ति जनता के द्वारा मुझे प्राप्त होगी, उसे भी ले जाकर आराम से जिओ।" साधू ने समझाया।

वल्लभ ने साधू की बात मान ली। उस दिन से वल्लभ साधू के साथ ही रहने लगा। साधू जिस गाँव में जाता, वल्लभ भी उसके साथ जाता। साधू जनता को जो उपदेश देता, उन्हे सुन लेता और साधू को प्राप्त उपहारों का संग्रह कर लेता। थोड़े दिन और बीत गये। एक दिन साधू ने वल्लभ से कहा–"मैं थोड़े दिनों के लिए समाधि में जानेवाला हूँ। समाधि से मेरे बाहर आने तक तुम मेरी जगह जनता को उपदेश देते जाओ। तुम मेरे उपदेश सुनते आ रहे हो न? अगर कोई अपना संदेह प्रकट करता है तो जैसे तुम से बन पड़ेगा जवाब देते जाओ।" यों समझाकर साधू समाधि में चला गया।

इसके बाद वल्लभ साधू की जगह बैठकर लोगों को उपदेश देने लगा। उनके संदेहों का निवारण करके अपने उपदेशों द्वारा जनता को संतुष्ट करने लगा।

एक दिन एक डाकू वल्लभ के दर्शन करने आया और बोला–"महात्मा! मैंने कई डाके डाले, अनेक लोगों की हत्याएँ

कीं, लेकिन मैं यह बात समझ न पाया कि मेरे पाप मेरा पीछा करते आ रहे हैं। भोले-भाले मेरे बच्चे, पत्नी व रिश्तेदार राजा के सिपाहियों के अत्याचारों का शिकार हो अपने प्राण खो बैठे हैं। इन सबका मूल कारण पापों से भरा यह धन है। आप इसे स्वीकार करके गरीबों में बांट दीजिएगा।" इन शब्दों के साथ वल्लभ के आगे बहुत सारा धन छोड़कर चला गया।

थोड़े दिन बाद एक प्रसिद्ध व्यापारी वल्लभ के पास आया और बोला—"स्वामी, मैंने व्यापार में अनेक धोखे-दगे व अन्याय करके बहुत सारा धन जोड़ रखा है, मगर मुझे अपनी ज़िंदगी में कोई सुख और शांति प्राप्त नहीं हुई। मेरी पत्नी और बच्चे जब विचित्र बीमारियों के शिकार हो मरते जा रहे थे, तब मेरा यह धन उन्हें बचा न पाया। पाप पूर्ण यह धन लोगों में बांटकर कृपया मुझे मानसिक शांति प्रदान कीजिए।"

इस तरह कई प्रकार के लोग वल्लभ के पास आते, अपने पापों के प्रति पश्चात्ताप प्रकट करके चले जाते थे। इन्हें देख वल्लभ का मन विकल हो उठा। उसने ठाठ की ज़िंदगी बिताने का जो सपना देखा, उसके प्रति वल्लभ के मन में विरक्ति पैदा हुई। इसके बाद दिव्यानंद समाधि से एक दिन बाहर आया। उसने वल्लभ से पूछा—"बेटा, तुम्हें सुखपूर्वक जीने के लिए आवश्यक धन लोगों से प्राप्त हो गया है क्या?"

ये शब्द सुनते ही वल्लभ साधू के पैरों पर गिर पड़ा और बोला—"स्वामीजी, मुझे यह तुच्छ धन नहीं चाहिए। इस धन के द्वारा मुझे कोई सुख प्राप्त नहीं हो सकता है। कृपया मुझ पर अनुग्रह करके मुझे भी अपने साथ रहने दीजिएगा।"

इसके बाद वल्लभ दिव्यानंद के साथ ही रहा। दिव्यानंद की मृत्यु के बाद उसकी गद्दी को स्वीकार करके जनता के द्वारा प्राप्त होनेवाले उपहारों को जनता की भलाई के कामों में लगाने लगा।

घूस के माने क्या है?

एक राजा के दरबार में गणपति नामक युवक की नौकरी लग गई। उसे दोनों हाथ कमाने का मौक़ा देख एक धनी व्यक्ति ने उसके साथ अपनी पुत्री का टाठ से विवाह किया और अनेक उपहार भी दिये।

लेकिन गणपति की पत्नी श्यामला ने अपनी ससुराल में आते ही जान लिया कि उसका पति घूस लेनेवाला नहीं है। उसने अपने पति पर घूस लेने पर जोर डाला। पर कोई फ़ायदा न रहा। आखिर खीझकर वह अपने पीहर जाने को तैयार हो गई।

इस पर गणपति ने अपनी पत्नी श्यामला से पूछा—"अगर मैं घूस लूँ तो क्या तुम मेरे साथ गृहस्थी चलाओगी?" श्यामला ने अपनी सम्मति दी।

तब गणपति ने कहा—"तो तुम जब अपने पीहर से लौटोगी तब तुम्हारे पिता के द्वारा भोजन करनेवाला सोने का थाल लेती आओ।"

"किसलिए? मैं जो दहेज़ और उपहार अपने साथ लाई, वह पर्याप्त नहीं है? उल्टे वे सोने का थाल क्यों देंगे? मैं नहीं लाऊँगी।" श्यामला ने कहा।

"तब तो चुराकर ले आओ।" गणपति ने सुझाया।

"मैं अपने पिता की संपत्ति की चोरी करूँ? क्या तुम पागल तो नहीं हुए?" श्यामला ने पूछा।

"घूस लेना भी ठीक मेरे लिए ऐसा ही है। राजा तो मेरे पिता के समान हैं। उनको धोखा देकर घूस लेना चोरी करने के बराबर है।" गणपति ने कहा।

इस पर श्यामला की यात्रा रुक गई।
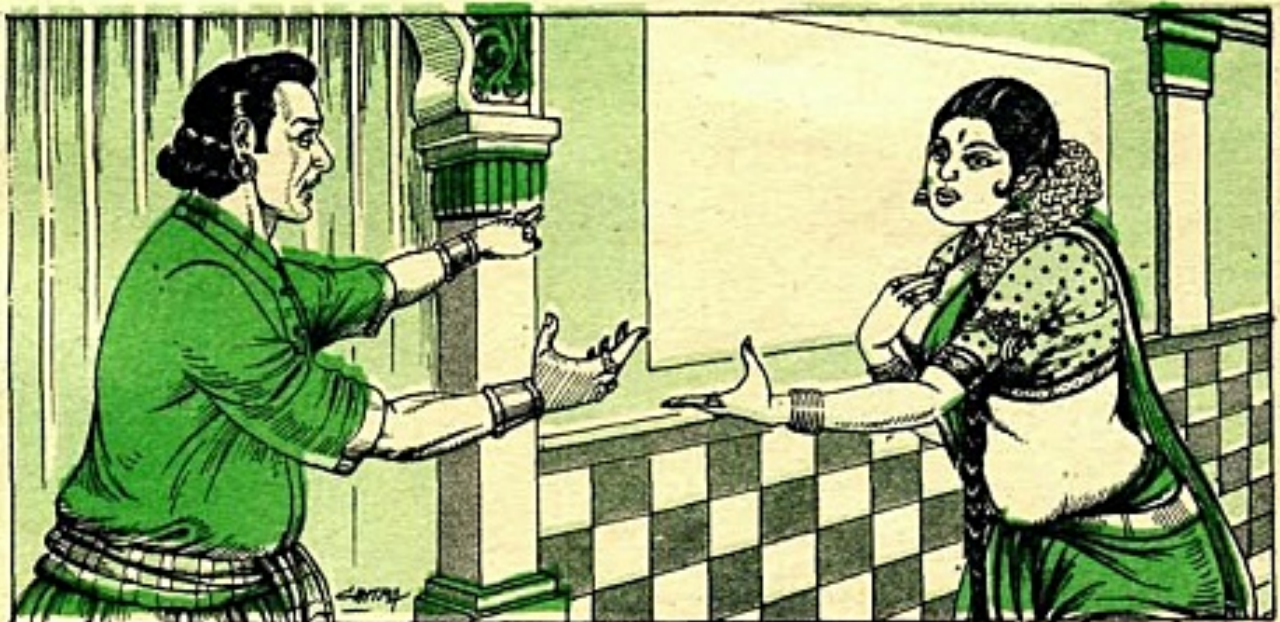
भगवान की संपत्ति

शिवाचारी एक गरीब ब्राह्मण था। गाँव के प्रमुख लोगों के आश्रय में जाकर वह पहाड़ पर स्थित मंदिर का पुजारी नियुक्त हुआ। लेकिन उसकी दरिद्रता दूर न हुई। मंदिर में भगवान के दर्शन के लिए जो भक्त आते थे, वे अपनी भेंटें भूगर्भ में स्थित हुंडी में डाल देते थे। पुजारी को मासिक वेतन को छोड़ कुछ हाथ न लगता था।

शिवाचारी को यह बात बड़ी बुरी लगी कि जब मंदिर की हुंडी में इतना सारा धन पड़ा हुआ है और उसे धन के वास्ते तड़पना पड़ रहा है। एक दिन रात को वह कुछ जरूरी औजार लेकर पहाड़ पर गया। बड़ी कुशलतापूर्वक हुंडी का ताला खोल दिया, उसमें चमकनेवाले गहने व सिक्कों को देख वह खुश हुआ। कुछ क़ीमती गहनों को उठाकर पोटली बांध ली, पुनः ताला बंदकर पहाड़ से उतर आया। घर पहुँचकर पिछवाड़े में एक जगह गाड़ दिया। वैसे वह स्वभाव से भुलक्कड़ था, इस कारण गहने जहाँ पर गाड़ रखा था, उसका हुलिया एक कागज़ पर लिख दिया और उस कागज़ को अपने घर के आले में शिवजी की मूर्ति के नीचे छिपा रखा।

इसके दो दिन बाद रात को शिवाचारी की नींद न लगी। तभी उसे पिछवाड़े में कोई आहट सुनाई दी। उसने ख़ुद जाकर देखा, पर कहीं किसी का पता न लगा।

शिवाचारी चौंककर चारों तरफ़ नज़र डाल रहा था, तभी उसके पीछे से कोई वायुगति से भाग गया और उछलकर दीवार फांद करके गायब हो गया।

शिवाचारी यह सोचते कि उसके खजाने का रहस्य कहीं किसी चोर पर तो प्रकट

शकुंतला गर्ग

न हो गया है, उस ओर बढ़ा, जहाँ पर उसने गहने गाड़ रखा था। तभी सिपाहियों ने आकर उसे घेर लिया। शिवाचारी ने सोचा कि सिपाही भागनेवाले चोर की खोज में आये हैं, उसने चोर के भागने की दिशा बताई।

पर सिपाहियों ने डांटकर कहा—"चोर तो तुम हो! और कौन हो सकता है? हमारी आँखों में धूल झोंककर यहाँ पर भाग आये हो! बताओ, तुमने चोरी का माल कहाँ पर छिपाकर रख दिया है?" इसके बाद सिपाहियों ने सारे पिछवाड़े को छान डाला, उन्हें एक झाड़ी में चोरी के माल का पता लगा। इस पर सिपाही शिवाचारी को पकड़ ले गये। शिवाचारी ने जो चोरी न की थी, उसी के लिए उसे सजा मिली।

दूसरे दिन रात को वह चोर पुन: शिवाचारी के घर आया। वह जानता था कि उस घर में कोई न होगा। उसका नाम शंभुदास था। शिवाचारी के घर उसे कोई चीज हाथ न लगी, पर आले में शिवजी की मूर्ति चमकते दिखाई दी। शंभुदास ने सोचा कि वह मूर्ति चांदी की होगी। उसने मूर्ति को उठाया। इस पर मूर्ति के नीचे रखा हुआ कागज़ का टुकड़ा नीचे गिर पड़ा। उसमें गहने छिपाने का हुलिया लिखा हुआ था।

शंभुदास को इस बात का आनंद हुआ कि उसकी पोटली खो गई तो दूसरी हाथ

लगने जा रहा है। कागज पर लिखे हुलिये के आधार पर उसने उस जगह खोदकर देखा, गहनों की पोटली उठाई। अपने अंगोछे को झोला बनाकर गहनों की पोटली उसमें डाल ली। रास्ते में बाजरे की रोटियाँ खरीद लीं, झोले में डाल एक सराय के चबूतरे पर जा बैठा। उस पर एक बैरागी पहले से ही बैठा हुआ था।

शंभुदास ने बाजरे की थोड़ी रोटियाँ खा लीं, अपनी भूख मिटाकर बची रोटियों को झोले में डाल लिया और झोले को सिरहाने रखकर सो गया।

शंभुदास के सो जाने पर बैरागी ने रोटियों को हड़पना चाहा, उसने अपनी थैली में से कोई नशे की दवा निकालकर शंभुदास को सुंघवा दी, शंभुदास जब बेहोश हो गया, तब झोला उठाकर सारी रोटियाँ खा डालीं, रोटियों को निकालते वक़्त गहनों की पोटली उसके हाथ लगी।

वह वास्तव में बैरागी का वेष धरा हुआ डाकू था। उसका नाम लिंग स्वामी था। वह अपना वेष बदलकर गहनों की पोटली के साथ कहीं भाग जाना चाहता था, तभी उसे पहाड़ पर मंदिर दिखाई दिया। वह उसी वक़्त उस निर्जन मंदिर की ओर चल पड़ा।

लिंगस्वामी अपना वेष बदल ही रहा था, तभी तड़के ही जाग कर मंदिर का निधिपालक और उसके नौकर भी वहाँ आ पहुँचे। वह निधिपालक मंदिर की हुंडी खोलकर भेंटों का हिसाब लगानेवाला दिन था। निधि पालक ने हुंडी खोलकर देखा तो आधी हुंडी खाली पड़ी थी। उसी वक़्त उसके नौकरों ने भगवान की संपत्ति के साथ लिंगस्वामी को पकड़ लिया। नौकरों ने लिंगस्वामी की खूब मरम्मत की और उसे कोतवाल के हाथ सौंप दिया।

भगवान की संपत्ति की वजह से दो आदमियों को कारागार की सजा मिली, पर वह संपत्ति आखिर भगवान के पास फिर पहुँच गई।

जानदार गुड़िया

एक गरीब आदमी के दो बेटियाँ थीं। बचपन में ही उन बच्चियों की माँ मर गई। इसलिए पिता ने ही उन्हें पाला। एक बार छोटी लड़की ने कपड़े से एक गुड़िया बनाई और अपनी दीदी से कहा–"दीदी, तुम भी एक गुड़िया बना दो, दोनों की शादी करेंगे।"

लेकिन बड़ी लड़की गुड़िया बनाना जानती न थी। उसने छोटी लड़की की गुड़िया छीन ली, फिर लौटाई नहीं। जब छोटी लड़की रोने लगी, तब उसके पिता ने कहा–"रोओ मत बेटी, दीदी जब गुड़िया बनायेगी, तब तुम को उसे दिलाऊँगा।"

इसके कुछ साल बाद बड़ी लड़की की शादी हो गई। एक साल बाद उसने एक लड़की का जन्म दिया। उस वक्त वह बीमार पड़ी। तब छोटी लड़की और उसके पिता बड़ी लड़की को देखने उसके ससुराल गये। बड़ी लड़की की बीमारी बढ़ती गई और आख़िर वह मर गई। मरते वक्त वह अपनी छोटी बहन के हाथों में अपनी बच्ची को याने जानदार गुड़िया को छोड़ गई।
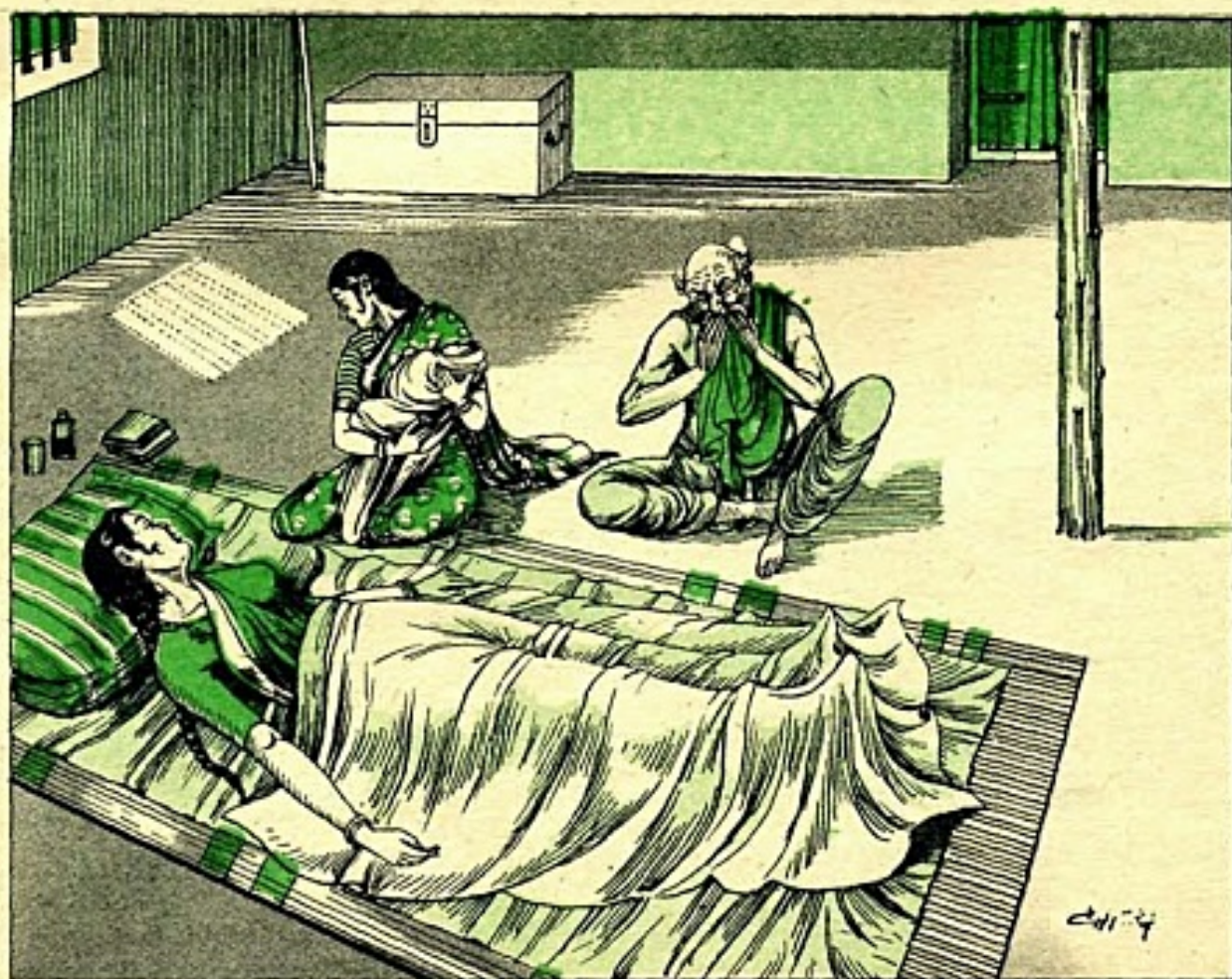
नग्न सत्य

रवीन्द्र साही नौकरी की खोज में राजधानी नगर के लिए रवाना हुआ। नगर में पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई। सामने एक बुजुर्ग को देख रवीन्द्र ने पूछा—"बाबूजी, आज रात को ठहरने के लिए कहाँ जगह मिल सकती है?" वह बुजुर्ग रवीन्द्र का सारा वृत्तांत जानकर अपने घर ले गया। स्नान करवाकर खाना खिलाया।

भोजन के वक़्त उन दोनों को एक युवती ने खाना परोसा। खाने के बाद जब वे दोनों आराम करने लगे, तब उस बुजुर्ग ने रवीन्द्र से कहा—"हमें जिस लड़की ने खाना परोसा, वह मेरे छोटे भाई की पुत्री है। उसका नाम रमा है। मेरा छोटा भाई राजा के दरबार में नौकरी करता था। एक बार दरबार में जाते वक़्त एक सांड ने उस पर सींग मारा, जिससे वह मर गया। उसके कोई लड़के नहीं हैं। इसलिए राजा ने यह वचन दिया है कि मेरे छोटे भाई के दामाद को नौकरी देंगे। यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो रमा के साथ शादी करके नौकरी में भर्ती हो जाओ।"

रवीन्द्र ने इस पर सोचा—रमा कोई अयोग्य लड़की नहीं है। उसके साथ शादी करने से बड़ी आसानी से नौकरी लग सकती है। यों विचार करके दूसरे दिन सवेरे रमा के साथ शादी करने की उसने अपनी सम्मति दी। इसके चार दिन बाद उसकी शादी हो गई।

शादी के थोड़े दिन बाद रवीन्द्र को रमा के स्वभाव का पता चला। वह घमण्डी थी। वह यह सोचकर अपने पति के साथ लापरवाही का व्यवहार करने लगी कि उसीकी वजह से उसके

प्रतिमा जैन

पति को नौकरी मिल गई है। साथ ही वह यह मानती थी कि इस कृपा के लिए रवीन्द्र को उसके प्रति कृतज्ञ बने रहने चाहिए। वह अड़ोस-पड़ोस की महिलाओं से अकसर डींग मारा करती थी—"क्या मेरे साथ मेरे पति शादी न करते तो उन्हें कभी नौकरी मिल सकती थी?"

ये बातें सुन रवीन्द्र दुखी होता। पर उसने कभी अपनी पत्नी को कुछ न कहा। इससे रमा का हौसला और बढ़ गया।

रमा के रिश्तेदार इलाज कराने या अदालत के काम पर अकसर राजधानी में आ जाते और रवीन्द्र के घर डेरा डाल देते थे। अगर वे लोग जाना भी चाहते तो रमा उन्हें जाने से रोक देती थी। पर रवीन्द्र इन सारी बातों को चुपचाप सहन कर लेता था।

एक बार रमा की फूफी जो विधवा थी, रमा को देखने के बहाने उसके घर अपने चार बच्चों के साथ आ धमकी। वह कई दिन उनके घर टिक गई। साथ ही वह पति-पत्नी के बीच कोई न कोई झगड़ा-टंटा खड़ा कर तमाशा देखती।

एक दिन रवीन्द्र ने रमा से पूछा—"क्या तुम्हारी फूफी के अपना कोई घर-द्वार नहीं? वह यों यहाँ पर और कितने दिन डेरा डाले बैठी रहेगी?"

रमा ने बिगड़कर कहा—"तुम्हारे तो अपना कहनेवाला कोई नहीं है, मेरे तो कई रिश्तेदार हैं। उनके आने से तुम क्यों सहन नहीं कर पाते हो? मेरी कृपा से ही यह गृहस्थी चल रही है, यह बात तुम मत भूलो।"

रवीन्द्र ने इसे भी चुपचाप सहन कर लिया, इस घटना के दो दिन बाद रवीन्द्र दरबार में नहीं गया, घर पर ही रह गया। रमा ने अपने पति से पूछा कि तुम नौकरी पर क्यों नहीं जाते हो?

रवीन्द्र ने समझाया—"नौकरी अब कहाँ रही? तनख्वाह के रुपये सराय जैसे इस घर को चलाने के लिए जब पर्याप्त

न हुए, तो मैंने घूस लेना शुरू किया और आख़िर पकड़ा गया। फिर क्या था? मेरी नौकरी छूट गई।"

रमा ने सर पीटकर पति को गाली सुनाई। चार-पांच दिनों में बचे-खुचे सारे रुपये ख़र्च हो गये। अपनी फूफी के पास बड़ी रक़म देख रमा ने उधार माँगा।

दूसरे ही क्षण उसकी फूफी ने अपना बोरा-बिस्तर बाँध लिया और ताने देने लगी—"वाह, यह भी खूब है! जिसके कोई नौकरी-वाकरी नहीं है, उसे कोई बुद्धिमान व्यक्ति उधार भी देगा?" यों कहकर वह उसी वक़्त चल पड़ी।

अब रमा की समझ में आया कि रिश्तेदार भी कैसे होते हैं? उस दुष्ट औरत का समर्थन करते रमा ने अपने पति की निंदा की थी। उसको खिलाने-पिलाने के वास्ते ही तो उसके पति ने घूस लेकर नौकरी से हाथ धो लिया है! मगर ऐन वक़्त पर उसकी ज़रूरत का ख्याल किये बिना ही फूफी चली गई। ये सारी बातें याद करके रमा अपने हाथों में मुंह ढांपकर फूट-फूटकर रोने लगी।

रवीन्द्र ने रमा को समझाते हुए कहा—"पगली, तुम रोओ मत! मेरी नौकरी छूटी नहीं है। मनुष्यों के स्वभाव कैसे होते हैं, इस बात का तुम्हें बोध कराने के लिए मैं झूठ बोला। रिश्तेदारों में भी हमारे सच्चे हितैषी कौन होते हैं? इस बात पर हमें निगरानी रखनी चाहिए। यों तो पति-पत्नी को आपस में एक दूसरे को भली भांति समझकर प्रेमपूर्वक रहना चाहिए, लेकिन एक दूसरे के प्रति कृतज्ञ रहने की बात कैसी है? यह बात सच है कि तुम्हारी वजह से मुझे नौकरी मिल गई है, मगर उसे बचाये रखने की सामर्थ्य भी तो मेरे भीतर होनी चाहिए। यह सामर्थ्य मेरी है, तुम्हारी कभी नहीं हो सकती। इस नग्न सत्य को तुम को समझ लेना चाहिए।"

इसके बाद रमा के व्यवहार में बहुत बड़ा परिवर्तन दिखाई देने लगा।

सच्चे वरदान

दो भाई अपने गाँव में जीविका का कोई जरिया न देख धन कमाने के लिए देशाटन पर निकल पड़े। रास्ते में दुपहर के वक्त खाने के लिए ज्यों ही उन्होंने खाने की पोटली खोल दी, त्यों ही एक योगी ने उनके निकट पहुँचकर पूछा—"भाई, मुझे भी भूख लगी है, क्या खाने को कुछ दोगे?"

दोनों भाइयों ने अपने खाने के दो हिस्से किये, एक हिस्सा योगी को देकर बाक़ी खा लिया।

योगी बड़ा खुश हुआ। जाते-जाते बोला—"मेरे पास अपने गुरु के दिये हुए दो वर हैं। ये वर वापस लौटनेवाले वर हैं। उन्हें मैं तुम दोनों को एक-एक दे देता हूँ। तुम लोग जिस किसी के लिए जो चाहेंगे, वही तुम्हें फिर प्राप्त होगा।" यों समझाकर योगी चला गया, पर उनकी समझ में न आया कि वे वर क्या हैं?

इसके बाद दोनों भाई दो दिशाओं में चले गये। बड़ा भाई सज्जन था। उसे जो मदद नहीं देता, उनकी चिंता न करता था। पर जो उसकी मदद देते थे, उन्हें वह सुखी देखने की कामना करता था।

छोटा भाई क्रोधी स्वभाव का था। उसकी जो लोग मदद न देते थे, उन्हें गालियाँ देते हुए बोला—"तुम्हारा मुँह बंद हो जाय! तुम्हारा पेट जल जाय!"

योगी के कथनानुसार वर सच्चे साबित हुए। बड़ा भाई धनी बना और छोटा भाई बीमारियों का शिकार हुआ।

किस्मत का खेल

प्राचीन काल में कोसल देश पर राजा अनंगपाल शासन करता था। एक बार अनंगपाल के सेनापति सौवीर ने विद्रोह करके राजा का वध किया और कोसल राज्य पर अधिकार कर लिया। राजा अनंगपाल के तीन पुत्र थे। वे अपनी जान बचाकर भाग गये और काशी राज्य के एक ब्राह्मण के घर आश्रय लिया। ब्राह्मण ने उन्हें सारी विद्याएँ सिखाईं और उनके जवान होने तक अपने घर पर ही रख लिया। एक दिन ब्राह्मण ने उन्हें समझाया—"अब तुम लोगों को जो मार्ग उचित समझें, उस पर चलकर तुम लोग अपने जीवन को सफल बना लो।"

सबसे बड़ा राजकुमार आदित्य था। उसने सोचा कि सेना का संगठन करना ही सबसे उत्तम मार्ग है। सैनिक शक्ति के द्वारा ही तो सेनापति उनका राज्य हस्तगत कर सका है। इसलिए सबसे पहले मुझे सेना का संगठन करना चाहिए और उसके द्वारा अपने खोये हुए राज्य को फिर प्राप्त करना चाहिए।

दूसरे राजकुमार विक्रम ने सोचा—'सभी साधनों का मूल धन ही है। धन के अभाव में सेना का संगठन करना और उनका पोषण करना संभव नहीं है।'

तीसरे राजकुमार उदयभानु का विचार था—सेना अथवा धन उत्तम आशय नहीं हें। जो कुछ है, उसी से संतुष्ट हो जाना सबसे अच्छा आशय है। अगर उनका सेनापति इस प्रकार अपनी स्थिति से संतुष्ट हुआ होता तो उनका राज्य उनके हाथों से छूट नहीं जाता।

अंत में तीनों ने यह निर्णय कर लिया कि अपने आशयों की सिद्धि के लिए सब लोग प्रयत्न करें और पाँच साल बाद पुनः

विमला ठाकुर

इसी स्थान पर मिलकर उन्हें इस बात का निर्णय लेना होगा कि वे अपने लक्ष्यों की सिद्धि में कहाँ तक सफल हुए हैं!

इसके बाद आदित्य कोसल राज्य में चला गया और गुप्त रूप से अपना कार्यक्रम चलाने लगा। उसने सेनापति के विद्रोह का वृत्तांत जनता में प्रचार किया। उन्हें बताया कि इस गद्दी के वारिस अब भी जीवित हैं, इस प्रकार वह सेना का संगठन करने लगा। फिर क्या था, विद्रोह करने के लिए आवश्यक दस हज़ार सैनिकों का दल उसके नेतृत्व में तैयार हुआ। यह काम संपन्न करके पाँच साल बाद वह ब्राह्मण के घर लौट आया। विक्रम डाकू दल के नेता के रूप में सफल हुआ और सौ डाकुओं के द्वारा धन की गठरियाँ उठवाकर पाँच सालों में लौट आया।

उदयभानु ने पाँच वर्ष किसी गाँव में बिताया। वह प्रारंभ में मजदूर बना रहा। धीरे-धीरे गाँव के मामलों में सक्रिय भाग लेते हुए कुएँ, तालाब व नहरें खुदवायीं। अड़ोस-पड़ोस के गाँवों में अच्छी ख्याति प्राप्त करके पाँच साल बाद वह भी लौट आया।

तीनों राजकुमारों की सफलताओं के समाचार सुनकर उनके गुरु बोले—"अच्छी बात है, तुम लोग कोसल देश को लौट जाओ। तुम लोगों ने जो शक्तियाँ प्राप्त कीं, उनके द्वारा अपने पिता का राज्य पुन:

प्राप्त करके आपस में बांट लो और सुखपूर्वक अपना जीवन बिता दो।"

आदित्य और विक्रम ने उदयभानु को कूपस्थ मंडूक माना। उसके मन में राज्य पाने की इच्छा न थी। इसलिए दोनों बड़े राजकुमार कोसल राज्य की ओर चल पड़े। आदित्य की आँख विक्रम के धन पर लगी हुई थी। वह सोचने लगा कि राजभक्ति से प्रेरित होकर सैनिक विद्रोह कर सकते हैं, लेकिन उनका पोषण करने के लिए धन तो चाहिए।

यों विचार कर आदित्य ने विक्रम से कहा–"तुम अपना धन मेरी सेना के लिए खर्च करो। राज्य पाने के बाद हम दोनों उसे बराबर बांट लेंगे।"

अपने बड़े भाई को सेना का संगठन में जो श्रम उठाना पड़ा था, यह बात भूलकर विक्रम बोला–"मेरे धन से जिस सेना का पोषण होगा, वह सेना तुम्हारी कैसें हो सकती है? राज्य में तुम्हें हिस्सा क्यों देना है?"

ये बातें सुन आदित्य गुस्से में आ गया। इस पर दोनों के बीच झगड़ा हुआ। विक्रम ने अपने बड़े भाई का वध किया। इस पर सेना अपनी बताई। इसके बाद सैनिक बल तथा विद्रोह में भाग लेनेवाले प्रमुख व्यक्तियों की मदद से विक्रम सेनापति को मार डालकर राजा बन बैठा।

मगर प्रमुख विद्रोहियों ने विक्रम को अपने राजा के रूप में स्वीकार नहीं किया, उन लोगों ने अपने असली नेता आदित्य को ही माना और विक्रम को आदित्य का वध करनेवाला हत्यारा घोषित कर उसके विरुद्ध फिर विद्रोह किया। इस पर पुनः लड़ाई छिड़ गई जिसमें विक्रम मारा गया।

अब सिंहासन पर बैठनेवाला कोई राजा न रहा। इस पर नगर के प्रमुख व्यक्तियों ने तीसरे वारिस की खोज की और उदयभानु से मिलकर उनसे निवेदन किया। अंत में उसे समझा-बुझाकर मनवा लिया और गद्दी पर बिठाकर उसका राज्याभिषेक किया।

उचित दण्ड

गंगाराम अव्वल दर्जे का कंजूस था। वह इतना कंजूस था कि धन के खर्च हो जाने के भय से उसने अपनी इकलौती कन्या की शादी तक न की थी। गंगाराम के पड़ोस में मंगाराम नामक एक युवक था। शहर में दूध बेचकर उन्हीं पैसों से अपने दिन काट लेता था। उसने एक दिन गंगाराम के सामने अपनी इच्छा प्रकट की कि उसकी कन्या के साथ शादी करने के लिए तैयार है, सिर्फ़ तीन रुपये खर्च करके फूल मालाएँ खरीदकर दे तो वे दोनों मंदिर में जाकर मालाएँ बदल लेंगे। पर देखते-देखते तीन रुपये खर्च करने को गंगाराम का मन नहीं मानता था, इसलिए वह शादी टालता ही गया।

अचानक एक दिन गंगाराम के मन में हल्वा खाने की इच्छा हुई। हल्वा बनानें में खर्च होगा, वे दो जून कांजी पीकर दुपहर को मुट्ठी भर चावल से काम चला लेते थे। ऐसी हालत में हल्वा के खर्च से वे लोग एक महीना गुज़ार सकते हैं। इस कारण गंगाराम जबर्दस्ती अपनी इच्छा को दबाता गया। मगर दिन प्रति दिन उसकी हल्वा खाने की इच्छा बलवती होती गई। परंतु घर में बनवा दे तो पत्नी और बेटी भी खा लेंगी। वक़्त पर उसकी गंध पाकर अड़ोस-पड़ोस के लोग भी आ धमके तो उन्हें भी थोड़ा-बहुत खिलाना पड़ेगा। यों सोचकर गंगाराम ने हल्वा के लिए आवश्यक सारी चीजें गुप्त रूप से एक टोकरी में रख दीं। उस पर थोड़ी घास ढक दी, सवेरे ही उठकर अपनी पत्नी से बोला—"अरी सुनो, मैं जरूरी काम पर बाहर जा रहा हूँ। शाम तक नहीं लौटूंगा।"

गंगाराम की पत्नी ने सोचा कि कम से कम एक दिन के लिए ही सही उसे अपने

रामकृष्ण तिवारी

पति का पिंड छूट जाएगा, वह बहुत खुश हुई। रात को बची थोड़ी कांजी पति के हाथ थमा दी। गंगारास कांजी पीकर टोकरी सर पर लिये जंगल की ओर बढ़ा। अभी तक सूर्योदय न हुआ था। जहाँ पर लकड़हारे तक न पहुँच पाये, उस जगह जाकर गंगाराम ने चूल्हा बनाया। सूखी घास व लकड़ी बीनकर चूल्हा जलाया, सूजी, चीनी, घी आदि टोकरी से निकालकर हल्वा बनाने लगा। उसका विचार था कि शाम तक थोड़ा-थोड़ा करके खाकर घर लौटा जाय।

थोड़ी ही देर में घी की गंध सारे जंगल में फैल गई। हल्वा बनकर तैयार हो गया। उसे चूल्हे से उतारकर खाना ही चाहता था, तभी पीछे से दो हाथों ने उस मटके को उठाया। गंगाराम ने घबराकर पीछे की ओर देखा, उसे काल के दूत जैसे चार आदमी दिखाई दिये। वे नामी डाकू थे। उन्हें देखते ही गंगाराम के हाथ-पैर कांप उठे। उसके मुँह से बोल न फूटे। वह एक दम नीचे गिर पड़ा।

उसकी परवाह किये बिना डाकुओं ने साल वृक्ष के पत्ते तोड़कर उन्हें पानी से धो लिया। हल्वा परोसकर गपशप करते खा डाला। मटका जब खाली हुआ तब उसे दूर फेंककर गंगाराम से कहे बगैर हाथ-मुँह साफ़ करते चल पड़े।

गंगाराम अपने पैर घसीटते दुपहर तक घर पहुँचा। मगर घर के दर्वाजे खुले पड़े थे। घर में पत्नी व पुत्री दोनों न थीं। तिजोरी के पास दौड़कर देखा, वह खाली पड़ी थी। उसका सारा धन व गहने उसी तिजोरी में थे।

अपनी छाती पीटते गंगाराम घर से निकल पड़ा। उसे पता चला कि उसी दिन सवेरे गंगाराम की पत्नी ने मंगाराम के साथ अपनी बेटी की शादी मंदिर में जाकर कर दी है और सब लोग दूर पर स्थित उसके मायके में थोड़े दिन बिताने के लिए चले गये हैं। तब लाचार होकर गंगाराम भी उसी गाँव की ओर चल पड़ा।

ज्योतिषी का भविष्य

संजय अपने साथ अर्जुन को गाँव के बाहर स्थित बरगद के पास ले जाते हुए बोला—"तुम भी अपना भविष्य क्यों नहीं जान लेते? दो दिन पहले हमारे गाँव में एक नया ज्योतिषी आया हुआ है। वह भूत, भविष्य और वर्तमान के सारे समाचार बता देते हैं। प्रत्येक प्रश्न के लिए सिर्फ़ आधा रुपया लेते हैं।"

अर्जुन ने सोचा कि अपना भविष्य जानने के लिए नहीं, बल्कि ज्योतिषी का भविष्य जानने के लिए उसे ज्योतिषी के पास अवश्य जाना चाहिए। वह हेतुवादी था, थोड़ा-बहुत जादू भी जानता था। इस कारण ऐसे लोगों पर वह बिलकुल विश्वास न करता था। यदि वह ज्योतिषी दगाबाज है, तो गाँववालों को उसके चंगुल से बचाना होगा, यदि वह ज्योतिषशास्त्र की सचमुच जानकारी रखता है तो उसका उचित रूप से अभिनंदन करना होगा।

यों विचार करके अर्जुन कुछ अन्य ग्रामवासियों के साथ बरगद के निकट पहुँचा। उसकी छाया में गंभीर मुख-मुद्रा बनाकर बैठे हुए ज्योतिषी को देखा। उसके केश लंबे थे और कंधों पर झूल रहे थे। उसके पीछे काली झाड़ियाँ थीं। उसके तथा झाड़ियों के बीच एक मिट्टी की वेदी थी। उस वेदी के मध्य भाग में एक लोहे की छड़ी खड़ी कर दी गई थी। वेदी पर फूलों की पंखुड़ियाँ बिखेर दी गई थीं। वेदी के एक तरफ़ लाल रंग पोता एक छोटा-सा कपाल था।

ज्योतिषी ध्यान मग्न था। उसके तीन शिष्यों में से एक भीड़ को कतार में खड़ा कर देता था। लोग पच्चीस-तीस तक थे।

श्री. ए. सी. सरकार, जादूगर

अपराह्न के समय भी उस वृक्ष के नीचे धुंधला अंधकार फैला हुआ था ।

थोड़ी देर बाद ज्योतिषी ने आँखें खोलकर कहा–"आप सब अपना भविष्य जानने के लिए आये हुए हैं । वास्तव में मैं ज्योतिष की बिलकुल जानकारी नहीं रखता हूँ । ज्योतिष बतानेवाला तो यह कपाल है । यह कपाल मेरे पैदा होने के पहले ही मिश्र देश में मृत्यु को प्राप्त एक छोटी बच्ची का है । इस कपाल को वज़नदार सोने की पेटी में बंद कर भूमध्य सागर में डुबो देने पर ही इस बच्ची को स्वर्ग की प्राप्ति होगी । इसी कार्य के वास्ते मैं धन जुटा रहा हूँ । इसलिए आप लोग एक एक सवाल के लिए आधा रुपया देने में संकोच न करें । एक एक करके मेरे आगे आइए ।" यों समझाकर अपने शिष्य को ज्योतिषी ने आदेश दिया– "सत्यानंद, वह कपाल उठा लाओ ।"

सत्यानंद ने ज्योतिषी के हाथ जो कपाल दिया, उसके नीचे एक सूराख था । उस सूराख को सब लोगों को दिखाकर कपाल को फिर से सत्यानंद के हाथ दिया । सत्यानंद ने उसे वेदी पर स्थित लोहे की छड़ी में उतार दिया । तदुपरांत ज्योतिषी बोला–"अब आप लोग अपने सवाल पूछ सकते हैं । कपाल अगर ऊपर उठकर गिर पड़ता है तो प्रश्न का उत्तर 'हाँ' है, अगर वह हिला नहीं तो उसका समाधान 'नहीं' ।

सब से पहले क़तार में आगे खड़े एक अधेढ़ उम्र के व्यक्ति ने ज्योतिषी के आगे स्थित थाल में आधा रुपया डालकर पूछा– "मैं और कितने दिन ज़िंदा रह सकता हूँ ?"

सबने विस्मय के साथ कपाल की ओर देखा । कपाल ऊपर उठकर नीचे गिर पड़ा । इसका मतलब था कि प्रश्नकर्ता थोड़े दिन और ज़िंदा रहेगा । फिर क्या था, वह व्यक्ति ज्योतिषी को प्रणाम करके हट गया । इसके बाद रामनाथ नामक एक बीमार व्यक्ति ने थाल में आधा रुपया डाल कर पूछा–"क्या मैं जल्दी मर जाऊँगा ?"

इस बार कपाल अपनी जगह से हिला नहीं। इस प्रकार एक एक करके सब लोग सवाल पूछते जा रहे थे। अर्जुन बड़ी सावधानी से उस क्रिया की जाँच कर रहा था। शाम को घर लौटा। रात भर सोचता रहा, अंत में वह एक निश्चय पर पहुँचा। सवेरा होते ही अर्जुन ज्योतिषी से मिला।

ज्योतिषी ने मीठे शब्दों में पूछा—"कहो भाई, तुम क्या चाहते हो?"

"मैं अपना भविष्य जानना चाहता हूँ।" अर्जुन ने उत्तर दिया।

"भविष्य जानने का यह वक़्त नहीं है। कपाल अब विश्राम कर रहा है। तुम सबके साथ अपराह्न में यहाँ पर आ जाओ!" ज्योतिषी ने समझाया।

अर्जून ने चारों ओर अपनी नज़र डाली। उसका ध्यान वेदी की बगल में स्थित छोटे-से खेमे की ओर आकृष्ट हुआ। ज्योतिषी और उसके शिष्य उसी खेमे में बसते हैं। उस खेमे की जगह की जाँच करने पर अर्जुन का संदेह दृढ़ हो गया।

अर्जुन अपने घर लौट आया और सोचने लगा कि ज्योतिष के धोखे को कैसे प्रकट किया जाय? तभी उसका लड़का साइकिल के पहिये को एक लकड़ी से चलाते खेल रहा था। उसे देखते ही
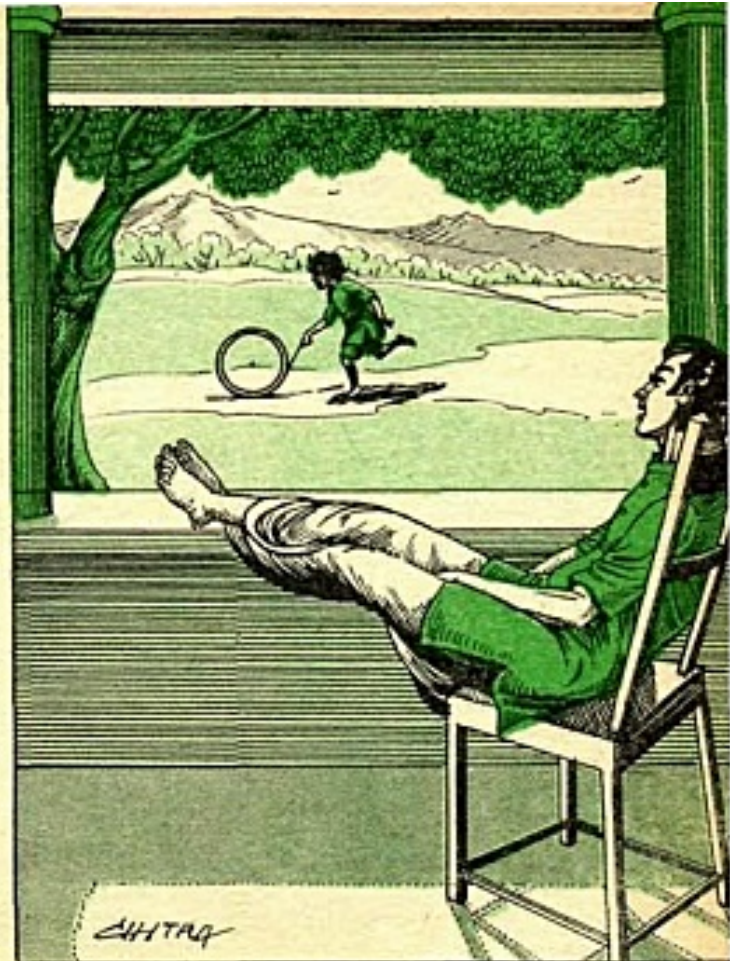
अर्जुन के मन में एक उपाय सूझा। उसने साइकिल के पहिये को अपने हाथ ले लिया, तीन-चार बार उसे चलाया। उसे अपने कार्य में सफलता मिलने जा रही है, यह भांपकर वह बहुत ही प्रसन्न हो उठा।

उस दिन अपराह्न को अर्जुन अपने लड़के को साथ ले ज्योतिषी के पास पहुँचा। गाँववालों की वहाँ पर भीड़ लगी थी। जल्दी ही प्रश्न पूछे जाने लगे।

अपनी बारी आने पर अर्जुन ने एक कागज़ पर लिखे चार प्रश्न ज्योतिषी को दिखाकर थाल में दो रुपये रख दिये और कहा—"महाशय, मेरे सवालों का जवाब देने के पहले कृपया साइकिल के पहिये को

मुझे उस ओर फेंकने दीजिए।" इन शब्दों के साथ उसने सारी ताक़त लगाकर खेमे तथा वेदी के बीच झाड़ियों की ओर लुढ़का दिया। पहिया जब खेमे और वेदी के बीच से गुजरने लगा तब लोहे की छड़ी पर कपाल उछल पड़ा।

अर्जुन के चेहरे पर मुस्कुराहट खिल गई, पर ज्योतिषी का चेहरा पीला पड़ गया। उसने अर्जुन की ओर तीक्ष्ण दृष्टि डाली।

अर्जुन ने हँसते हुए कहा–"मेरा पहला सवाल है: क्या सूर्य पूरब में उगता है? दूसरा प्रश्न: लोहे से क्या रूई हल्की है? तीसरा: सोना पीतल से ज्यादा क़ीमत है? चौथा: ओस आग से ज्यादा ठण्डी होती है? महाशय ज्योतिषीजी! मैंने क़ीमत चुकायी है। इसलिए मेरे इन छोटे सवालों का जवाब कपाल से कहलवाइये!"

फिर क्या था, कपाल हिला तक नहीं। ज्योतिषी और उसके साथी भागने के प्रयत्न में थे, तब अर्जुन ने अपने मित्रों को इशारा किया। उन लोगों ने धोखेबाजों को घेर लिया। इस पर अर्जुन ने गाँववालों से यों कहा–"दोस्तो! हमारे भोलेपन का आधार बनाकर यह ज्योतिषी हमें धोखा दे रहा था। यह सच्चा कपाल नहीं है। कागज़ के गूदे से बनाया गया है। इसे एक काले धागे से ऊपर-नीचे हिलाता है। धागे का एक छोर लोहे की छड़ी के छोर से बंधा हुआ है। दूसरा छोर खेमे में बैठे एक आदमी के हाथ में है। कागज़ का यह कपाल लोहे की छड़ी में जब उतरा जाता है, तब यह धागा उसे लपेट लेता है। खेमे में बैठा व्यक्ति जब धागे को खींच लेता है तब कपाल ऊपर उठता है। धागे को ढीला करने पर वह कपाल उतर जाता है।

इसके बाद वेदी और खेमे की जांच करने पर अर्जुन की बातें सच्ची साबित हुई। ज्योतिषी ने धोखा देकर जो धन कमाया था, उसे गाँववालों ने वापस ले लिया और ज्योतिषी तथा उसके अनुचरों को पुलिस के हाथ सौंप दिया।

अयोध्या में एक बार श्रीरामचन्द्र अपने मंत्री, सामंत आदि के साथ राज-सभा में विराजमान थे, उस वक़्त तेज़ी के साथ महर्षि विश्वामित्र ने सभा में प्रवेश करके कहा–"हे राम! काशिकापुरी के राजा ययाति ने घमण्ड में आकर मेरा अपमान किया है, तुम को शीघ्र ही उस दुष्ट का संहार करना होगा! गुरु के नाते यही मेरी आज्ञा है!" यों कहकर विश्वामित्र तेजी के साथ चले गये ।

विश्वामित्र की आज्ञा सुनकर श्रीरामचन्द्र विस्मय में आ गये, ययाति रामचन्द्रजी के प्रति विनय प्रदर्शित करते हुए, धर्म का पालन करते हुए, काशी राज्य पर शासन करनेवाला सामंत राजा है । विश्वामित्र ने सर्व प्रथम यज्ञ-रक्षा के हेतु राम-लक्ष्मण को अपने साथ ले जाकर उन्हें अनेक दिव्य अस्त्रों का उपदेश कराया, साथ ही उन्हें बल, अतिबल इत्यादि विद्याएँ प्रदान करनेवाले गुरुदेव हैं । प्रजा के कल्याण में निरत हो, रामचन्द्रजी के प्रति श्रद्धा-भक्ति रखते हुए, धर्म का आचरण करनेवाले ययाति का वध कैसे करे? साथ ही विश्वामित्र की आज्ञा का कैसे तिरस्कार करे?

श्रीरामचन्द्र ने उसी वक़्त सभा विसर्जित की, अपने मंत्रणागृह में सुमंत को बुलाकर कहा–"सुमंत, यह मेरा आंतरंगिक व्यक्तिगत मामला है! मुझे अकेले ही जाकर ययाति का वध करना होगा! हम

४१. राम-हनुमान का युद्ध

दोनों द्वन्द्व युद्ध करेंगे, इससे बढ़कर किसी भी प्रकार से जनता का क्षय नहीं होना चाहिए, आप इसी वक़्त ययाति के पास समाचार भेज दीजिए कि उनका वध करने के लिए हम आ रहे हैं ।"

वास्तव में बात यों हुई थी—गाँवों की जनता ने काशी के राजा ययाति से यह निवेदन किया था कि जंगलों में से हाथियों के झुंड तथा अन्य जंगली जानवर आकर उनके गाँवों पर हमला करके अपार क्षति पहुँचा रहे हैं! इस पर ययाति उनका शिकार करने चल पड़ा। उस वक़्त विश्वामित्र उसी मार्ग से जा रहे थे, शिकार खेलने के उत्साह में तेज़ी से दौड़नेवाले रथ पर बैठे ययाति ने विश्वामित्र के आगमन पर ध्यान न दिया और वह शिकार खेलने चला गया ।

इसे विश्वामित्र ने अपने लिए अपमान की बात समझी और उसी वक़्त उन्होंने प्रतिज्ञा की—"ययाति को चाहिए था कि रथ से उतरकर मेरे चरणों में प्रणाम करके मेरे प्रति भक्ति और श्रद्धा प्रदर्शित करें, पर इसके विपरीत मेरा अपमान करनेवाले ययाति का संहार न करूँ तो मैं विश्वामित्र नहीं कहलाऊँगा ।" इसके बाद वे सीधे रामचन्द्रजी को आज्ञा दे चले गये ।

भेदियों के द्वारा समाचार जानकर ययाति भय के मारे कांप उठा, ययाति की पत्नी यशोधरा थी । उस दंपति के चन्द्रांगद नामक पुत्र और चन्द्रमुखी नामक पुत्री थी, वह सारा परिवार रामचन्द्र के प्रति आराधना किया करता था । इसलिए वे सब एक साथ शोक में डूब गये ।

थोड़ी देर बाद ययाति स्वस्थ हो बोल उठा—"मैं रामचन्द्रजी के पास जाकर निवेदन करूँगा—मैं शरणागत हूँ, निरपराधी हूँ ।" ये शब्द कहते वह उठ खड़ा हुआ ।

इसके बाद वह राजपरिवार अयोध्या के लिए रवाना होने को हुआ, तभी सामने से नारद मुनि आ पहुँचे । नारद ययाति को देख खिल-खिलाकर हँस पड़े और

बोले–"हे भोले-भाले राजन! लगता है कि तुम विपत्ति के समय अपने विवेक को खो बैठे हो! श्रीरामचन्द्रजी इस बात के लिए प्रसिद्ध हैं कि उनका वचन एक ही होता है, उनका बाण एक है। वे अवश्य तुम्हारा संहार कर बैठेंगे! अब सोचने का वक़्त नहीं है! तुम इसी वक़्त अंजनादेवी के आश्रम में चले जाओ! उनसे अभय पाओ! हनुमान तो उन्हीं का पुत्र है, वह इस वक़्त वहीं पर है!"

ययाति को नारद की बातें समुचित प्रतीत हुईं। वह उसी वक़्त अंजना देवी के आश्रम की ओर दौड़ा। उस समय अंजना देवी अपना ध्यान समाप्त कर उठने को थी। उनके कानों में ये बातें सुनाई दीं–"मैं शरणागत हूँ! मेरी रक्षा कीजिए! मैं प्राण के भय से अभय माँगने आया हूँ!" उस समय अंजना देवी ने देखा–प्राण के भय से हाथ जोड़कर ययाति कांपते खड़ा है।

"बेटा, तुम डरो मत! मैं अपने पुत्र की शपथ लेकर कह रही हूँ। मैं देखूँगी कि तुम पर कोई विपत्ति न आएगी!" यों अंजना देवी ने ययाति को अभय दिया। उसी समय हनुमान गंधमादन पर्वत से वहाँ पर आ पहुँचा। ययाति ने माता-पुत्र दोनों को साष्टांग दण्डवत करके विनती की–"मेरा नाम ययाति है। मैं काशी का राजा हूँ। रामचन्द्रजी के प्रति भक्ति और श्रद्धा रखनेवाला हूँ। मेरी रक्षा कीजिए।"

हनुमान को ययाति पर दया आ गई। उसने ययाति की भुजाएँ पकड़कर ऊपर उठाया और कहा–"हे राजन! अभी अभी तो मेरी माताजी ने आप को अभय प्रदान किया है! फिर भी आप डरते क्यों हैं? मैं भी प्रतिज्ञा कर रहा हूँ कि मैं अपनी माताजी के वचन की रक्षा करूँगा।"

इस पर ययति बोला–"ओह! हनुमान, मैं कैसे बता सकता हूँ? श्रीरामचन्द्रजी अकारण ही मेरा वध करने आ रहे हैं।" इन शब्दों के साथ ययाति ने सारा वृत्तांत हनुमान को सुनाया।

हनुमान ने निश्चल भाव से सारी बातें सुनीं। अंजना देवी यह कहते विचार में डूब गईं–"उफ़! कैसी भूल हो गई है! मैंने यह समाचार जाने बिना वचन दिया है।"

इस पर हनुमान ने अपनी माता को समझाया–"माताजी! अब चिंता करने से कुछ होने को नहीं, शरणागतों की रक्षा करने से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। मेरे जीवित रहते इस ययाति की कोई हानि नहीं हो सकती!"

ययाति को हनुमान के द्वारा अभय प्रदान करने का समाचार अयोध्या में भी पहुँचा। रामचन्द्र तथा सीताजी को भी यह खबर मिल गई।

अंत:पुर पर खड़े सीताजी ने देखा कि यशोधरा दो बच्चों के साथ राजमहल की ओर बढ़ी चली आ रही है। थोड़ी देर बाद महल के समीप पहुँचकर यशोधरा बोली–"माताजी जानकी! मुझे भिक्षा दीजिए! पति-भिक्षा दीजिए।"

"बहन, हमें मालूम हुआ है कि तुम्हारा पति हनुमान के आश्रम में सुरक्षित है। तुम यक़ीन मानो, तुम्हारे पति के लिए कोई डरने की बात न होगी। तुम और तुम्हारे बच्चे मेरे साथ यहीं पर रह जाओ।" यों समझाकर सीताजी ने आदरपूर्वक अंत:पुर में उनके ठहरने का सारा प्रबंध किया। वे दोनों बच्चे सीताजी के साथ खूब हिल-मिल गये। सीताजी के मन में संतान की कामना पैदा हुई। उन्होंने सोचा, ऐसे मेरे भी बच्चे भी हों तो क्या ही अच्छा होगा!

रामचन्द्रजी धनुष और बाण धारण कर ययाति का संहार करने पैदल ही चल पड़े। उनके पीछे तीनों भाई, उनके पीछे मंत्री तथा अन्य परिवार भी चल पड़ा। सिवाय रामचन्द्रजी के किसी के हाथ कोई हथियार न था।

रामचन्द्रजी के निकट आते ही हनुमान ने सादर उनका स्वागत किया और अपनी अंजुली में स्थित फूल उनके चरणों के आगे डाल दिये।

इसके बाद रामचन्द्रजी के चरणों के आगे घुटने टेक हनुमान बोला—"रामचन्द्रजी, ययाति पर कृपया आप अनुग्रह कीजिए! ये तो निरपराधी हैं। दुर्बल को दण्ड देना आप जैसे महानुभाव के लिए उचित नहीं है, मैं इनकी तरफ़ से आप से प्रार्थना करता हूँ। आप इन्हें क्षमा कर दीजिए!"

इस पर रामचन्द्रजी ने क्रोध में आकर कहा—"ओह! तुम मुझको उपदेश दे सकने योग्य बड़े हो गये हो?" इन शब्दों के साथ राम ने हनुमान पर लात मारा। इस पर हनुमान प्रसन्न हो बोला—"हे राम! आप के जिस चरण के स्पर्श से एक शिला शाप से मुक्त होकर अहल्या के रूप में पवित्र हो गई है, उसी चरण के स्पर्श से मेरा यह शरीर इतने समय बाद धन्य हो गया है। अब मेरे शरीर में अपूर्व शक्ति आ गई है।"

ये शब्द सुनकर भी राम शांत न हुए। कुपित हो बोले—"अरे वानर! तुम ये चिकनी-चूपड़ी बातें बंद कर ययाति को मेरे हाथ सौंप दो! मैं अपने गुरु की आज्ञा का पालन करने के हेतु यहाँ पर आया हुआ हूँ।"

"हे रामचन्द्रजी! आप यह जानने का प्रयत्न किये बिना अकारण ही एक निरपराधी का वध करने यहाँ पर आये हैं कि गुरु की आज्ञा कैसे अन्यायपूर्ण है! मैं अपनी माताजी के वचन का पालन करने के लिए ययाति की रक्षा करने यहाँ पर खड़ा हुआ हूँ। इसलिए आप पहले मेरा वध करके तब अपना कर्तव्य पूरा कर लीजिए।" यों कहकर हनुमान गंभीर मुद्रा में उठ खड़ा हुआ। इसके दूसरे ही क्षण हनुमान का शरीर बढ़ता गया।
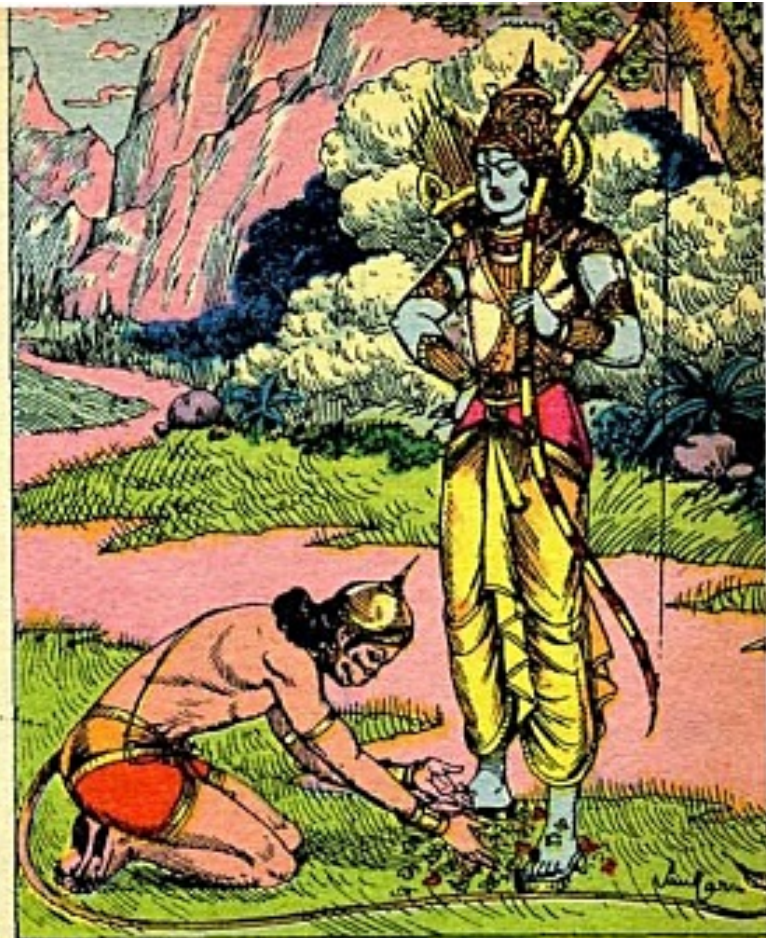
इसे देख रामचन्द्रजी व्यंगपूर्वक बोले—"ओह, तुम इतने बड़े हो गये हो? मैंने नहीं सोचा था कि मेरे सामने खड़े हो जाने की हिम्मत रखनेवाले वीर बन जाओगे।"

"प्रभू! यह सब आप के चरणों की महिमा है! मैंने अभी अभी तो यह बात बताई है!" हनुमान ने नम्रतापूर्वक जवाब दिया।

इसके बाद रामचन्द्रजी ने धनुष पर बाण चढ़ाया। हनुमान अपनी पूँछ बढ़ाकर घुमाने लगा। रामचन्द्र के सारे बाणों को हनुमान अपनी पूँछ से रोककर फेंकता गया। उस समय विश्वामित्र भी लंबे डग भरते वहाँ पर आ पहुँचे।

रामचन्द्र के प्रत्येक बाण के लगते ही हनुमान अपने शरीर को बढ़ाता गया, इस पर रामचन्द्रजी को अपने धनुष को उठाकर आकाश की ओर निशाना लगाना पड़ा। तब हनुमान वीरासन लगाकर बैठ गया और इतमीनान से बोला–"रामचन्द्रजी! मैं समझता हूँ कि अब मैं आप के निशाने की परिधि में हूँ।"

आखिर रामचन्द्रजी अत्यंत क्रुद्ध हो दूज के चन्द्रमा जैसी आकृतिवाला बाण निकाल कर बोले–"अब मैं आखिरी बार अपने राम बाण को तुम्हारे वक्ष पर निशाना साधकर प्रयोग करने जा रहा हूँ। इसके द्वारा तुम्हारा काम समाप्त हो जाएगा और मेरा भी काम संपन्न होगा।"

विश्वामित्र दौड़े आकर बोले–"रामचन्द्र, मैं चाहता हूँ कि अब तुम युद्ध करना छोड़ हनुमान के प्रति प्रसन्न हो आओ। यह सारा दृश्य देखने के बाद मेरा अहंकार जाता रहा है! बेचारे ययाति का कोई दोष नहीं है।"

मगर रामचन्द्र ने अस्वीकार सूचक सर हिलाकर कहा–"नहीं, गुरुदेव! मेरा अस्त्र अभी बचा है! मैं आप की आज्ञा का पालन करके ही छोडूंगा। आप कृपया मुझे न रोकिये।"

उस वक्त रामचन्द्रजी ने अपना बाण धनुष पर चढ़ाया। हनुमान की ओर निशाना साधकर कहा–"हनुमान! मैं अपने रामबाण का तुम्हारे वक्ष पर निशाना लगा रहा हूँ। अब भी सही, तुम अपने अहंकार को त्याककर ययाति को मेरे हाथ सौंप दो और राम के सच्चे सेवक कहलाओ!"
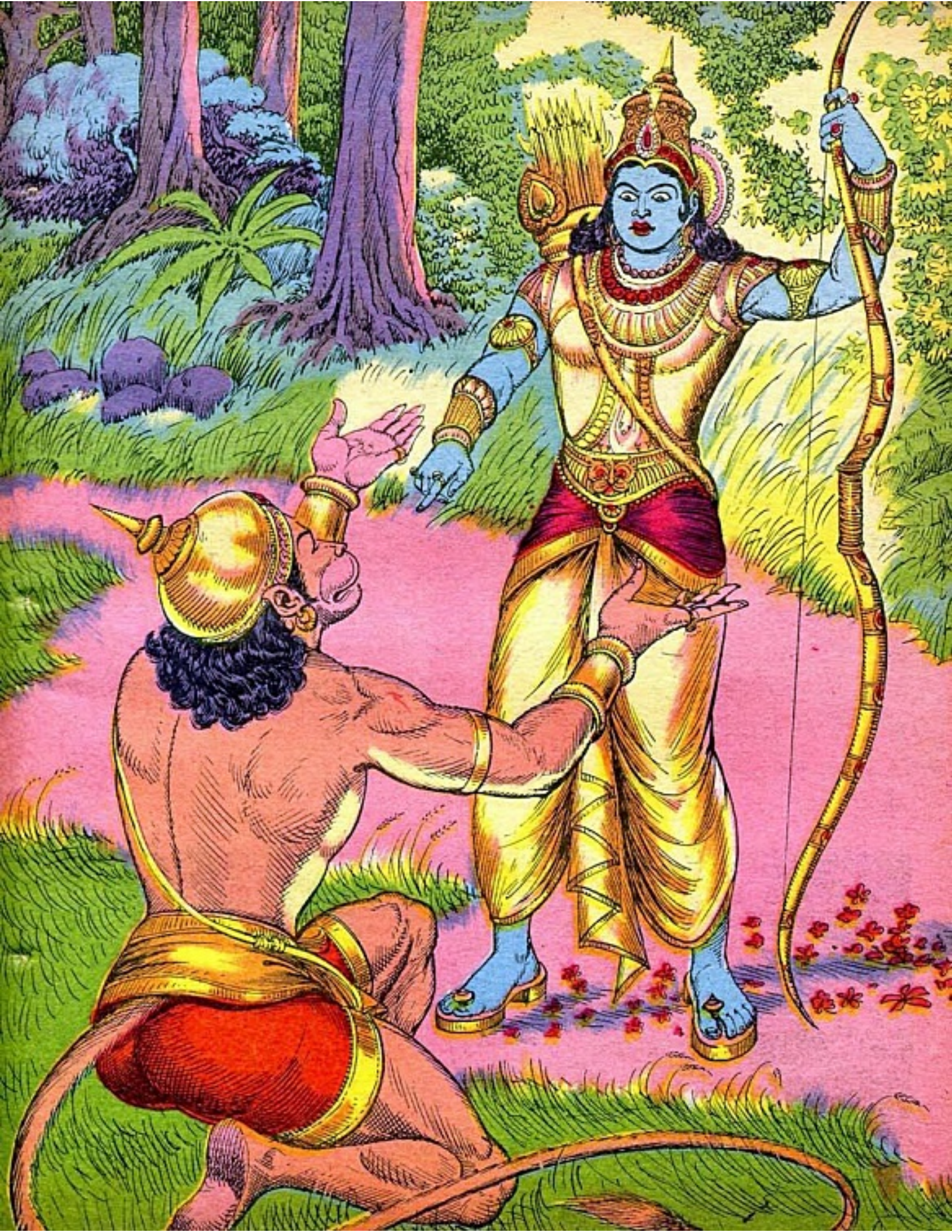
हनुमान ने इसके उत्तर में दृढ़ स्वर में कहा—"मैं अब तब सदा रामचन्द्र का विश्वासपात्र सेवक हूँ। शरण देकर त्यागनेवाले क्षुद्र व्यक्ति आप का सेवक बनकर नहीं रह सकता। यह आप के लिए भी अपमान की बात है। आप शीघ्र ही अपने रामबाण का प्रयोग कीजिए! मैं हृदयपूर्वक आप के बाण का स्वागत करता हूँ।" यों कहते हनुमान ने अपने दोनों हाथों से अपने कलेजे को चीर डाला और बाण के निशान के सामने हृदय खोलकर पकड़ा रहा। रामचन्द्रजी ने अपना बाण छोड़ दिया। वह बाण हनुमान के कलेजे में घुसकर अदृश्य हो गया। उस वक़्त हनुमान के हृदय में प्रकाशमान राम का रूप दिखाई दिया। इस अद्भुत को देखते सब लोग निश्चेष्ट रह गये। इस पर रामचन्द्रजी ने अपना धनुष उतारकर कहा—"हनुमान! तुम अजेय हो! मैं ही पराजित हो गया हूँ!"

इसके बाद हनुमान ने अपने कलेजे को चीरकर दोनों हाथों से जो पकड़कर रखा था, उनके हटाते ही कलेजा यथा प्रकार बंद हो गया। तब हनुमान सर झुकाकर रामचन्द्रजी को प्रणाम करके बोला—"रामचन्द्रजी! इसमें विजय-पराजय किसी की भी नहीं है। आप ने अपने अस्त्र को मेरे हृदय में स्थित आप ने ही ग्रहण किया है! वह आप ही के अन्दर विलीन हो गया है। इसमें मेरा पराक्रम बिलकुल नहीं है।"

विश्वामित्र ने आगे बढ़कर हनुमान को अपने आलिंगन में लिया और उसकी प्रशंसा करते हुए बोले—"हनुमान! शरणागत की रक्षा करने में तुमने रामचन्द्र जैसे व्यक्ति का सामना कर अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया और तुम इस प्रकार सच्चे वीर कहलाये। 'वीर हनुमान' शब्द तुम्हारे लिए सार्थक हो गया है।"

इसके बाद हनुमान ने रामचन्द्रजी तथा सीताजी को प्रणाम किया, उन्हें विदा करके गंधमादन पर्वत पर फिर तपस्या में निमग्न हो गया।

ऋण-मुक्ति

मण्पूर का युवराजा यशोधर्म एक बार अपने मित्रों तथा परिवार के साथ जंगल में प्रवेश करके शिकार खेलने लगा ।
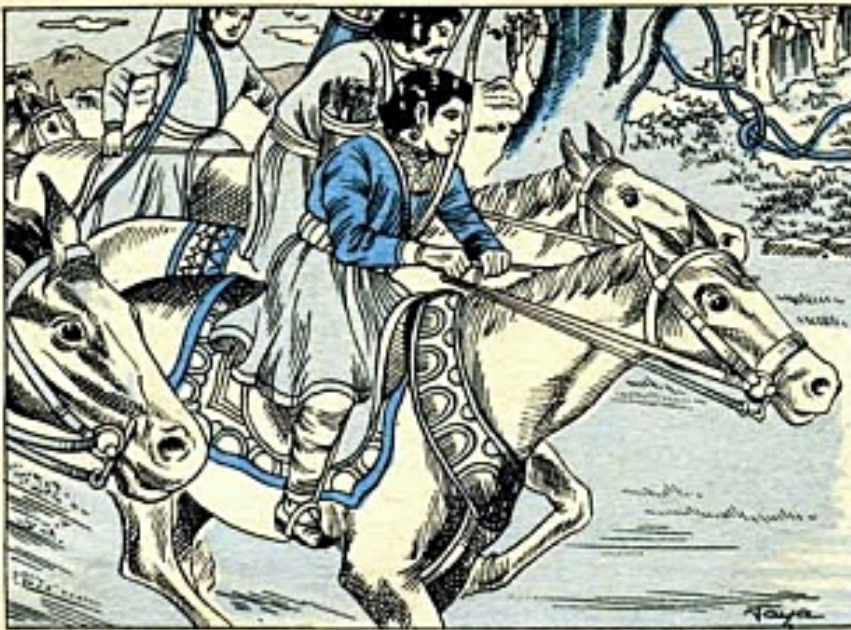
युवराजा को एक सुंदर हिरण दिखाई दिया । वह घोड़े से उतरकर हिरण पर बाण चलाने को हुआ । पर हिरण बिजली की गति के साथ दौड़ पड़ा । युवराजा उसका पीछा करते हुए अपने परिवार से दूर हो गया ।

वह थक गया था, उसे बड़ी प्यास भी लगी थी । उसने थोड़ी दूर पर एक निर्मल जल धारा देखी ।

अपनी थकावट को मिटाने के ख़्याल से युवराजा उस जल प्रवाह में कूद पड़ा और उसकी तेज गति में बहने लगा। उस वक्त एक युवती ने एक जबर्दस्त लता फेंककर युवराजा के प्राण बचाये।

वह युवती एक ब्राह्मण की पुत्री थी। युवराजा ने उस युवती को अनेक पुरस्कार देना चाहा। मगर उस युवती ने पुरस्कार लेने से अस्वीकार करते हुए बताया कि जब उसे पुरस्कार की जरूरत होगी, तब वह कहला भेजेगी।

कई साल बीत गये। ब्राह्मण की पुत्री का विवाह मथुरा के एक पुजारी के साथ हुआ। इस बीच युवराजा यशोधर्म भी राजा बन गया।

उन्हीं दिनों में हूणों ने मालव देश पर आक्रमण किया। उनका नेता मिहिर गुल था। वह जब-तब हमले करके नगरों को जला देता और जनता को मार डालता था।
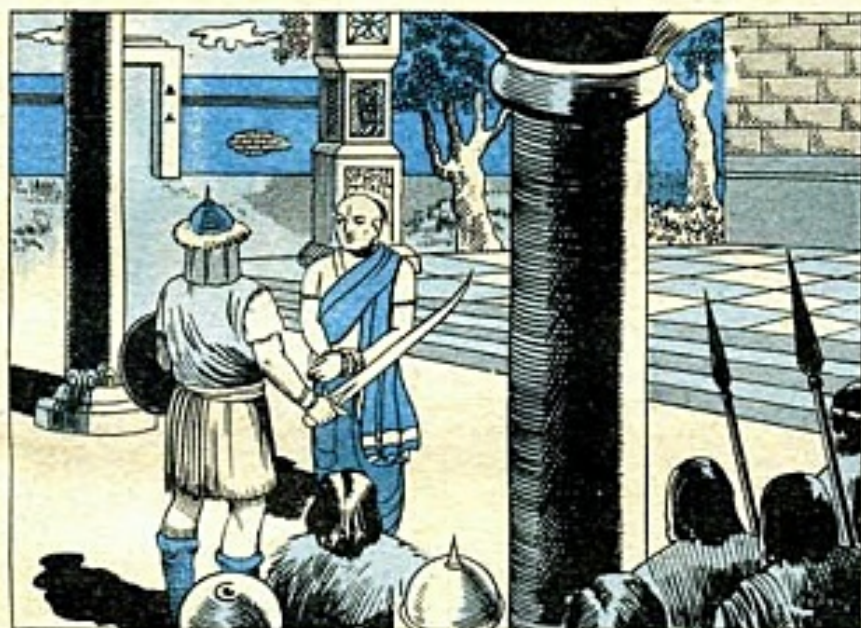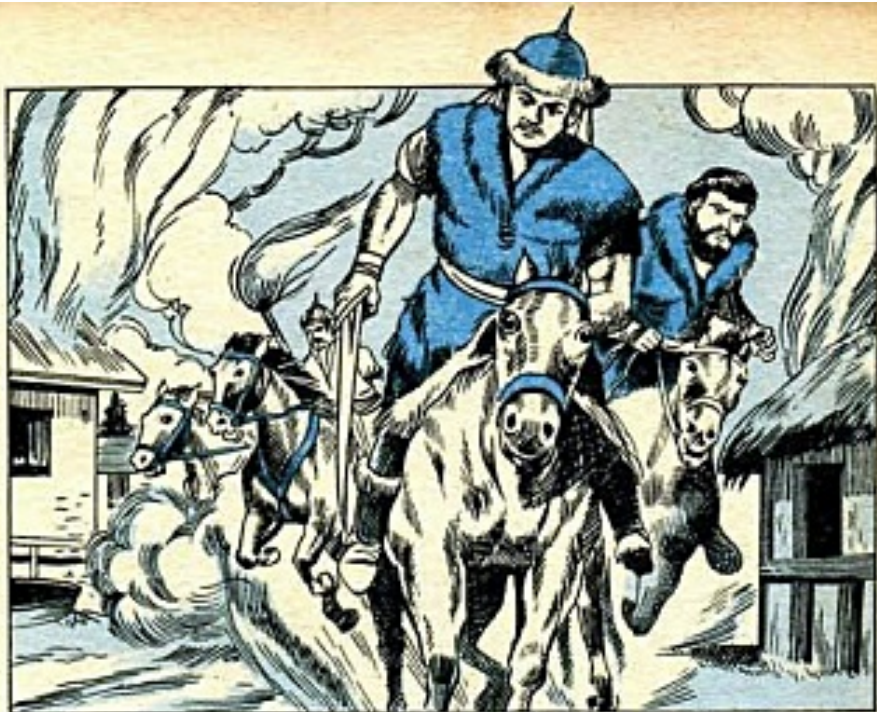
आख़िर हूणों ने मथुरा के एक मंदिर को लूटा। उसी मंदिर के पुजारी के साथ ब्राह्मण कन्या ने विवाह किया था। हूणों ने पुजारी के साथ उसकी पत्नी और कन्या को भी बन्दी बनाया।

पुजारी की पुत्री बड़ी सुंदर थी। हूणों के नेता ने बताया कि पुजारी की पुत्री का विवाह अगर उसके साथ किया जाएगा तो वह उन्हें मुक्त करेगा।

इस शर्त को पुजारी, उसकी पत्नी और पुत्री ने भी स्वीकार नहीं किया। अंत में पुजारी की पत्नी ने एक व्यक्ति के द्वारा यशोधर्म के पास यह ख़बर भेज दी–"मुझे पुरस्कार के रूप में आप कृपया हूणों के साथ युद्ध करें।"

यशोधर्म ने कुछ और राजाओं के साथ मिलकर हूणों पर हमला किया। आख़िर युद्ध में उन्हें बुरी तरह से हराकर बड़ी विजय प्राप्त कर ली।

अपने प्राण बचानेवाली नारी को बंधनों से मुक्त करने के लिए राजा यशोधर्म जब कारागार में पहुँचा, तब वह मृत स्थिति में पाई गई। इस पर राजा रो पड़ा, मगर उसे इस बात का संतोष हुआ कि उसने उस नारी का ऋण चुकाया और इस तरह उसे ऋण से मुक्ति मिल गई।

कहानी शीर्षक-प्रतियोगिता

कहानी का सुंदर शीर्षक देकर रु. २५ जीतिए!

?

एक गरीब ब्राह्मण ने एक बार एक जमीन्दार से सहायता माँगी, जमीन्दार बड़ा दानी था। उसने ब्राह्मण को एक दुधारू गाय दान में दी। गाय को बांधने के लिए झोंपड़ी न थी, झोंपड़ी बनाने के लिए जमीन्दार ने रुपये दिये। गाय के चरने के लिए घास या दाना न था, जमीन्दार ने घास व दाना भी दिये।

गाय जो दूध देती, उसे शहर में जाकर बेचने में ब्राह्मण को बड़ी तक़लीफ़ होती थी। इसलिए जमीन्दार ने ही दूध ख़रीदने का आश्वासन दिया।

ब्राह्मण के सामने एक और कठिनाई थी। उसकी पत्नी रसोई बनाना नही जानती थी; उस समय तक वे लोग भिक्षाटन करके अपने दिन गुज़ार देते थे, वह चूल्हा तक जलाना नहीं जानती थी। इस कारण जमीन्दार ने ब्राह्मण के घर एक रसोइन को भेजा, मगर भोजन के वक्त चार आदमी ब्राह्मण के घर पहुँचे। ब्राह्मण ने उन लोगों से पूछा—"आप लोग कौन हैं? किसलिए आये हैं?"

"आप तो बड़े ही सुस्त हैं न? इसलिए खाना खाने के लिए जमीन्दार ने इन लोगों को भेजा है।" रसोइन ने जवाब दिया।

★ ★ ★

उपर्युक्त कहानी के लिए बढ़िया शीर्षक कार्ड पर लिखकर, निम्न लिखित पते पर भेजें—"कहानी शीर्षक-प्रतियोगिता", चन्दामामा २ & ३, आर्काट रोड़, मद्रास-६०००२६

कार्ड हमें मार्च १० तक प्राप्त हों और उसमें फोटो-परिचयोक्तियाँ न हों। इसके परिणाम चन्दामामा के मई '७८ के अंक में घोषित किये जायेंगे।

जनवरी मास की प्रतियोगिता का परिणाम: "किस्सा चबूतरे का"

पुरस्कृत व्यक्ति: अरुणकुमार, C/o रामचन्द्र ईश्वरचन्द्र, पंसारी बाजार, आंबाला छावनी

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २५)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां मई १९७८ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

Devidas Kasbekar

★

S. Paramasivan

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्दों की हों और परस्पर संबंधित हों ।

★ मार्च १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए, उसके बाद प्राप्त होनेवाली परिचयोक्तियों पर विचार नहीं किया जाएगा ।

★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) २५ रु. का पुरस्कार दिया जाएगा ।

★ दोनों परिचयोक्तियाँ कार्ड पर लिखकर (परिचयोक्तियों से भिन्न बातें उसमें न लिखें) निम्नलिखित पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

जनवरी के फोटो-परिणाम

प्रथम फोटो : ढोलक की थाप पर पड़ते हाथ !

द्वितीय फोटो : नहीं छूटेगा अब अपना साथ !!

प्रेषक: शकुक अहमद, वोर्ड-१ जवाहर नगर कॉलोनी, रतलाम-४५७००१ (म. प्र.)

पुरस्कार की राशि रु. २५ इस महीने के अंत तक भेजी जाएगी ।

Statement about ownership of CHANDAMAMA (Hindi)

Rule 8 (Form VI), Newspapers (Central) Rules, 1956

1. *Place of Publication*	...	'CHANDAMAMA BUILDINGS' 2 & 3, Arcot Road Vadapalani, Madras-600 026
2. *Periodicity of Publication*	...	MONTHLY 1st of each calendar month
3. *Printer's Name*	...	B. V. REDDI
Nationality	...	INDIAN
Address	...	Prasad Process Pvt Limited 2 & 3, Arcot Road, Vadapalani Madras-600 026
4. *Publisher's Name*	...	B. VISWANATHA REDDI
Nationality	...	INDIAN
Address	...	Chandamama Publications 2 & 3, Arcot Road, Vadapalani Madras-600 026
5. *Editor's Name*	...	NAGI REDDI
Nationality	...	INDIAN
Address	...	'Chandamama Buildings' 2 & 3, Arcot Road, Vadapalani Madras-600 026
6. *Name & Address of individuals who own the paper*	...	CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND Beneficieries:

1. B. V. HARISH
2. B. V. NARESH
3. B. V. L. ARATI
4. B. L. NIRUPAMA
5. B. V. SANJAY
6. B. V. SHARATH
7. B. L. SUNANDA
8. B. N. RAJESH
9. B. ARCHANA
10. B. N. V. VISHNU PRASAD
11. B. L. ARADHANA
12. B. NAGI REDDI

All Minors—by Trustee :
M. UTTAMA REDDI, 9/3, V.O.C. Street, Madras 600 024

I, B. Viswanatha Reddi, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

B. VISWANATHA REDDI
Signature of the Publisher

1st *March* 1978

everest/929/PP-hn